कुनबे की सियासत

केंद्रीय खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्री पशुपति कुमार पारस के मंत्रिमंडल से इस्तीफे की खबर जिस समय आई, लगभग उसी वक्त झारखंड मुक्ति मोर्चा की विधायक और शिबू सोरेन की बड़ी बहू सीता सोरेन के भाजपा का दामन थामने की भी सूचना आई। ये दोनों खबरें बिहार-झारखंड में राजनीतिक नफे-नुकसान से ज्यादा सियासी खानदानों के अंतःपुर में महत्वाकांक्षाओं की भिड़ंत की ही मुनादी करती हैं। विडंबना यह है कि बड़े राजनीतिक दल भी ऐसे परिवारों के इर्द-गिर्द अपने लिए संभावनाएं तलाशने के आदी हो चले हैं। यही कारण है कि एक गठबंधन को छोड़ने के बाद ये दूसरे गठजोड़ में आसानी से वही मुकाम हासिल कर लेते हैं। पशुपति कुमार पारस को आज शिकायत है कि एनडीए में उनके साथ नाइंसाफी हुई है, मगर यह सवाल उन्हें खुद से पूछना चाहिए कि आखिर उनके साथी सांसद चिराग पासवान के यहां क्यों हाजिरी लगा रहे थे? दरअसल, वे जानते थे कि सत्ता-संघर्ष में पारस ने भले मंत्री पद हासिल कर लिया हो, मगर अवाम के बीच चिराग ही सक्रिय रहे हैं और उनकी सभाओं में उमड़ती भीड़ को एनडीए व भाजपा का नेतृत्व नजरंदाज नहीं कर सकेगा। तब तो और, जब बिहार में एनडीए के सामने अपनी सीटें बचाने की बड़ी चुनौती है! पिछले चुनाव में इस गठजोड़ के पास 40 में से 39 सीटें थीं।

पशुपति पारस हों, सीता सोरेन हों या राज ठाकरे, विरासत का लाभ सब लेना चाहते हैं, पर लोकतंत्र में सियासी वारिस चुनने का अधिकार तो जनता के पास है।

झारखंड के सोरेन परिवार की कहानी इससे अलग नहीं है। हेमंत सोरेन की गिरफ्तारी के बाद जब वहां मुख्यमंत्री पद की दौड़ में उनकी पत्नी कल्पना का नाम उछला, तभी यह खबर भी आई थी कि सीता सोरेन इसके खिलाफ हैं, तब शिबू-हेमंत सोरेन के भरोसेमंद सहयोगी व पार्टी के वरिष्ठ विधायक चंपई सोरेन के नाम पर सहमति बनी थी और परिवार में बगावत की आवाज दब गई थी, मगर अब सीता सोरेन ने झामुमो का दामन झटककर साफ कर दिया है कि वह महज कयासबाजी नहीं थी। बहरहाल, सीता के इस फैसले से हेमंत सोरेन की गिरफ्तारी और जेल पर सहानुभूति वोट बटोरने की झामुमो व इंडिया ब्लॉक को रणनीति को झटका लगेगा, क्योंकि स्वाभाविक ही सीता अब सोरेन परिवार में अपने साथ नाइंसाफी को मुद्दा बनाएंगी।

भारतीय लोकतंत्र की यह कटु सच्चाई है कि मतदाताओं ने ही इन परिवारों को मान्यता दी है और यही कारण है कि जो राजनेता या राजनीतिक पार्टियां सार्वजनिक तौर पर परिवारवाद की आलोचना करती हैं, वे भी इनकी शरण में जाने से नहीं कतरातीं। मगर पशुपति पारस हों, सीता सोरेन हों या राज ठाकरे हों, वे परिवार की विरासत का लाभ तो उठाना चाहते हैं, मगर भूल जाते हैं कि राजनीतिक वारिस के चयन का अधिकार जनता ने राजनीतिक दलों को नहीं सौंपा है, बल्कि अपने पास रखा है, और वह सिर्फ खानदान का सदस्य होने मात्र से किसी को संसद या विधानसभा में बार-बार नहीं भेजती, उस सदस्य की निजी शख्सियत का भी समान रूप से आकलन करती है। आजादी के बाद राज्य-दर-राज्य जिन परिवारों ने अपनी मजबूत राजनीतिक पहचान बनाई है, उनके संघर्षशील सदस्य ही अपनी विरासत को आगे ले जा सके हैं, अन्यथा जनता द्वारा नकारे गए राजनीतिक परिवारों की संख्या भी कोई कम नहीं है। इसलिए मौजूदा दौर में परिवारवाद से ज्यादा चिंता की बात मौकापरस्त राजनीति है। इसमें सिर्फ सत्ता या कुरसी ही महत्वपूर्ण लक्ष्य है, सामाजिक-संस्थागत बदलाव की राजनीति लगातार पिछड़ती जा रही है, इसीलिए बगावतें भी मूल्यों को लेकर नहीं, पदों से प्रेरित होने लगी हैं।

हिन्दुस्तान Hindustan | 75 साल पहले 20 मार्च, 1949

अटलांटिक संधि

अटलांटिक संधि के लिए कई महीनों से गुप्त बातचीत चल रही थी। आखिर संधि का मसविदा अधिकृत रूप से प्रकाशित कर दिया गया है। सात राष्ट्रों ने इस संधि पर हस्ताक्षर करने की स्वीकृति दी है। उनमें ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, बेल्जियम, हालैण्ड और लक्ष्मबर्ग शामिल हैं। इनके अलावा नार्वे, डेनमार्क, आइसलैंड, नीदरलैंड और इटली को उसमें सम्मिलित होने की इजाजत दी गई है। आशा की जाती है कि अप्रैल के प्रथम सप्ताह में इस संधि पर हस्ताक्षर हो जायेंगे। उसकी अवधि बीस वर्ष निर्दिष्ट की गई है।

इस संधि की सबसे महत्वपूर्ण धारा वह है, जिसके अनुसार इस संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देश यदि उनमें से किसी एक या अधिक पर सशस्त्र आक्रमण किया गया तो उसे सभी के विरुद्ध किया गया अक्रमण समझेंगे और अलग-अलग या मिलकर आक्रान्त देश अथवा देशों की सहायता करेंगे। इस सहायता में फौजी ताकत द्वारा सहायता भी शामिल होगी और उसका उद्देश्य उत्तरी अटलांटिक क्षेत्र की सुरक्षा पुनः स्थापित करना और कायम रखना होगा। इसके अलावा इस संधि में उस पर हस्ताक्षर करने वाली किसी भी पार्टी की भौगोलिक एकता, राजनीतिक स्वतंत्रता अथवा सुरक्षा को खतरा पैदा होने पर आपसी परामर्श की व्यवस्था की गई है।

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखने की मुख्य जिम्मेदारी संयुक्त राष्ट्र संघ पर है। अटलांटिक संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों ने अप्रत्यक्ष रूप से यह मान लिया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ पर वे भरोसा नहीं रखते कि वह अपने उस दायित्व को पूरा कर सकेगा। निश्चय ही यह कहा गया है और आगे भी कहा जायेगा कि इस संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देश संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों और सिद्धांतों पर पूरी श्रद्धा रखते हैं और उसकी सदस्यता से उत्पन्न होने वाली जिम्मेदारियों को निभायेंगे। किन्तु साधारण से साधारण व्यक्ति भी यह समझ सकेगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ से अलग राष्ट्रों की जो भी गुटबन्दी होती है, वह संयुक्त राष्ट्र संघ को अन्ततः कमजोर ही बनायेगी। अमेरिका आज दुनिया की सबसे बड़ी ताकत है। उसकी सहायता का आश्वासन पाने वाले देश अपनी प्रजा के बारे में निश्चिन्तता अनुभव कर सकते हैं, किन्तु इस गठबंधन को दुनिया के कुछ अन्य देश संदेह और शक की दृष्टि से देखे बिना नहीं रह सकते।

नकली दवाओं का हो असली इलाज

चंद्रकांत लहारिया | वरिष्ठ चिकित्सक

बाजार में नकली या घटिया दवाओं की हिस्सेदारी 35 से 40 प्रतिशत तक बताई जाती है। यह गंभीर चिंता का विषय है। नकली दवा कारोबारियों पर तत्काल नकेल कसनी चाहिए।

शायद ही कोई सप्ताह ऐसा गुजरता हो, जब हम भारत में नकली या घटिया दवाओं के बारे में न सुनते हों। मार्च के पहले हफ्ते में तेलंगाना से नकली दवाओं की जब्ती की खबर आई थी। वे सिर्फ नकली दवाएं ही नहीं थीं, बल्कि जिस कंपनी का नाम सामने आया था, वह वास्तव में अस्तित्व में ही नहीं थी। कहने की जरूरत नहीं कि दवा में कोई उपयोगी घटक नहीं था और वे केवल चॉक पाउडर और स्टार्च थे।

भारत में नकली या घटिया दवाओं का प्रचलन जन-स्वास्थ्य के लिहाज से एक गंभीर चुनौती है। हालांकि, सरकारें अक्सर इस चुनौती को कमतर आंकती हैं, लेकिन स्वतंत्र विशेषज्ञ और मीडिया रिपोर्टें बाजार में कुल दवाओं में नकली या घटिया दवाओं की हिस्सेदारी 35 से 40 प्रतिशत तक बताती हैं। मुमकिन है कि यह हिस्सेदारी इससे कम हो, लेकिन उतनी भी कम नहीं हो सकती, जैसा दावा सरकारी रिपोर्टें करती हैं। वास्तविक आंकड़ा कहीं बीच का हो सकता है। फिर भी, यह बड़ी चिंता का विषय है, क्योंकि यह सीधे मानव जीवन से जुड़ा मसला है। यही कारण है कि नकली दवाओं का मुद्दा कई दवा उद्योग संघों द्वारा नियमित रूप से उठाया जाता रहता है।

कभी-कभी मेरे मरीज यह शिकायत लेकर लौटते हैं कि दवा तो सही समय पर और सुझाए गए तरीके से ली थी, फिर क्यों नहीं हम ठीक हुए? मैंने यहां उन मरीजों का जिक्र किया है, जो जांच-रिपोर्टों में पुष्ट की गई बीमारी में स्टैंडर्ड यानी उच्चस्तरीय दिशा-निर्देशों के तहत सुझाई गई दवाएं खाने के बाद भी ठीक नहीं हुए थे। दवाओं के ब्रांड बदलने के बाद, जिनमें समान बायोलॉजिकल साल्ट थे, वे ठीक हो गए। इससे साफ जाहिर होता है कि उनके स्वस्थ न होने की वजह थी, दवाओं की निम्न गुणवत्ता!

कैंसर जैसी जानलेवा बीमारियों में तो नुकसान दोतरफा है। ऐसी बीमारियों की दवाएं महंगी आती हैं, इसलिए इसमें नकली दवाओं के प्रचलन का मतलब है कि मरीजों को न सिर्फ उनकी ऊंची कीमत चुकानी पड़ती है, बल्कि उनके बेअसर या कम असर होने के कारण उनकी जान पर भी बन आती है। ऐसी नकली दवाएं बड़े व छोटे शहर, दोनों जगह आम हैं। कोविड-19 महामारी ने कई दवा कंपनियों को जन्म दिया, लेकिन ज्यादातर विशेषज्ञों का मानना है कि महामारी के दौरान और उसके बाद नकली दवाओं की चुनौती बढ़ गई है। नकली और कम गुणवत्ता वाली दवाओं के आने के पीछे कुछ लोग ऑनलाइन बाजार को भी जिम्मेदार मानते हैं, जहां से कभी-कभी कम गुणवत्ता-नियंत्रण और जांच के साथ दवाएं उपभोक्ताओं तक सीधे पहुंचा दी जाती हैं।

नकली रोगाणुरोधी दवाएं अनिवार्य रूप से बड़ी सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती बन गई हैं। एक तरफ, नकली दवाएं बीमारी पर सीमित प्रभाव डालती हैं, तो दूसरी तरफ, लोगों की बिना डॉक्टरी सलाह के और अपर्याप्त अवधि तक दवा खाने की आदत भी परेशानी का सबब बन जाती है। नकली दवाओं के पीछे नियमों का पूरा पालन न होना, दवा निरीक्षकों का कम संख्या-बल और दवाओं की शुद्धता की जांच करने के लिए प्रयोगशाला जैसी सुविधाओं की कमी भी जिम्मेदार है।

भारत को विश्व की फार्मेसी कहा जाता है। उत्पादन के मामले में हमारा दवा उद्योग दुनिया में तीसरा सबसे बड़ा है। हम विश्व-स्तरीय टीकों का उत्पादन करते हैं, जो विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों के अनुकूल हैं। लिहाजा, नकली व कम गुणवत्ता वाली दवाओं से जल्द निपटना अनिवार्य है। इससे पार पाना सरकारों, नीति-निर्माताओं, फार्मा उद्योग व नागरिकों, सभी के हित में है। देखा जाए, तो मरीजों के लिए गुणवत्तापूर्ण दवाएं सुनिश्चित करना सरकार का नैतिक दायित्व भी है। हमें इस क्षेत्र में पर्याप्त जागरूकता पैदा करनी ही होगी।

भारत में फार्मा लाइसेंस राज्य का विषय है। इसका मतलब है कि केंद्र सरकार का इस पर सीमित नियंत्रण होता है। चूंकि, देश भर में लगभग आठ लाख फार्मेसियों की निगरानी के लिए दवा निरीक्षकों की भारी कमी है, इसलिए औषधि निरीक्षकों की भूमिका आंशिक रूप से नागरिकों को भी सौंपी जानी चाहिए, क्योंकि आम नागरिक ही इन दवाओं से ज्यादा प्रभावित होते हैं। यदि कोई नागरिक किसी दवा का परीक्षण कराना चाहता है, तो उसकी पहुंच आसान होनी चाहिए। कई देशों में नकली उत्पादों के बारे में सार्वजनिक शिकायत प्रणाली है। जनता ऐसी शिकायतें ऑनलाइन कर सकती है, जिन पर एजेंसियां तत्काल काम करती हैं। भारत में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। हमें गुणवत्तापूर्ण दवाओं की सुनिश्चितता तय करने के लिए एक आंदोलन खड़ा करना होगा, जहां नागरिक दवाओं का परीक्षण खुद करा सकें। जब तक नागरिक आंदोलन खड़ा नहीं किया जाएगा और आसान एवं रियायती परीक्षण की सुविधा नहीं दी जाएगी, दवाओं की गुणवत्ता में सुधार करना मुश्किल है।

इसके साथ ही, दवा निर्माण कंपनियों में नकल-रोधी उपाय और गुणवत्ता नियंत्रण को भी सार्थक बनाना होगा। उपलब्ध प्रौद्योगिकी का उपयोग गुणवत्ता नियंत्रण और आपूर्ति शृंखला को मजबूत करने के लिए किया जाना चाहिए, ताकि नकली दवाओं की आमद रोकी जा सके। मरीजों के लिए यह जांचने की व्यवस्था होनी चाहिए कि दवा असली है या नकली? क्यूआर कोड को क्रमबद्ध करने और 'ट्रेस ऐंड ट्रैक' प्रौद्योगिकी को प्रभावी बनाने की आवश्यकता है। नकली दवाओं से अमीर या गरीब, देश का सभी वर्ग प्रभावित होता है। फिर, भारत दवाओं का एक प्रमुख विनिर्माण केंद्र भी है, लिहाजा बाजार में बेची जाने वाली दवाओं की गुणवत्ता सुनिश्चित करना हमारे हित में ही है।

विश्व के एक बड़े हिस्से की गुणवत्तापूर्ण दवाओं तक पहुंच नहीं है। अपना देश भी अपवाद नहीं है। हमें जरूरतमंदों तक गुणवत्तापूर्ण दवाएं पहुंचाने की चाक-चौबंद व्यवस्था करनी होगी। आपूर्ति शृंखला में हानिकारक दवाओं की आमद रोकने के लिए 'क्लोज्ड लुप मेडिकेशन मैनेजमेंट सिस्टम' (सीएलएमएमएस) बनाने हेतु उद्योग और सभी हितधारकों के साथ मिलकर काम करना होगा। आपूर्ति शृंखला में यदि यह इस्तेमाल होता है, तो हानिकारक दवाओं का पता आसानी से लग सकता है और हम त्वरित प्रतिक्रिया में सक्षम हो सकते हैं।

जाहिर है, हमें समय रहते इन तमाम चुनौतियों को देखना और समझना होगा, अन्यथा नकली दवाओं का कारोबार देश की प्रतिष्ठा और आम जन के स्वास्थ्य को भारी नुकसान पहुंचा सकता है। इसका देश की अर्थव्यवस्था पर भी नकारात्मक असर पड़ सकता है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

काश! फिर हर घर में सजने लगे गौरैया का घोंसला

बृज लाल | राज्यसभा सांसद व पूर्व आईपीएस

घर को अपनी चीं..चीं से चहकाने वाली गौरैया अब कम दिखाई देती है। इस छोटे आकार वाली खूबसूरत पक्षी का कभी इंसानों के घरों में बसेरा हुआ करता था। घरों की छत पर, कभी आंगन में फुदकने वाली गौरैया की संख्या लगातार कम होती जा रही है। इस पक्षी के संरक्षण के लिए हर वर्ष 20 मार्च को विश्व स्तर पर विश्व गौरैया दिवस मनाया जाता है।

मैंने अपना बचपन जिला बस्ती (अब सिद्धार्थनगर) के गांव गुजरौलिया खालसा में बिताया है। मेरा मकान खपरैल का था, जिसका कुछ हिस्सा फूस का था। गौरैया को घोंसला बनाने की जरूरत नहीं होती थी। फूस और खपरैल के मकानों में उसे रहने के लिए पर्याप्त जगह मिल जाती थी। वह घास के कुछ तिनके बीनकर लाती थी और आरामदायक बसेरा बना लेती थी। नेस्टिंग सीजन में गौरैया जोड़ा बनाती है और तीन से पांच अंडे देती है। दो हफ्ते में अंडों से बच्चे निकल आते हैं।

गौरैया झुंड में रहना पसंद करती है और हमेशा इंसान के आसपास रहती है, जिससे अपने को सुरक्षित रख सके। गौरैया दिवस पर विशेष :

गौरैया एक सामाजिक चिड़िया है, जो झुंड में रहना पसंद करती है और हमेशा इंसान के आसपास ही रहती है, जिससे वह अपने को सुरक्षित रख सके। कच्चे मकान गौरैया के लिए प्राकृतिक वातावरण और तापमान के लिहाज से अनुकूल रहते थे। अधिक तापमान में गौरैया के लिए रहना बड़ा मुश्किल होता है। पहले घरों के आस-पास काफी पेड़-पौधे होते थे, जिसके कारण गौरैया को भोजन के लिए कीड़े भी मिल जाते थे। वयस्क गौरैया घास के बीज, घर का बचा-खुचा खाना खाकर गुजारा कर लेती थी, परंतु अपने बच्चों के लिए उसे नरम चारे की ही जरूरत होती है। कीटनाशकों के अधिक प्रयोग के कारण गौरैया के आहार भी जहरीले हो चले हैं और रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग से कीड़े-मकोड़े भी विलुप्त हो चुके हैं, जिससे गौरैया के भोजन का संकट खड़ा हो चुका है। गौरैया मानव जीवन के लिए बहुत जरूरी है। वह घर के आसपास हानिकारक कीड़ों, मच्छरों के लार्वा खाकर हमें विभिन्न बीमारियों से बचाती है। वह फसल, फल-फूलों पर भोजन की तलाश में फुदकती रहती है, जिससे स्वतः परागण हो जाता है और अच्छी फसल की कारक बन जाती है।

वर्ष 1958 में चीनी तानाशाह माओत्सेतुंग ने एक मुहिम शुरू की, जिसमें 4 जीव-जंतुओं को मारने का हुक्मनामा जारी हुआ। 4 जीवों में चूहे, मच्छर और मक्खियों का तो कुछ नहीं बिगड़ा, पर गौरैया पूरे चीन से लगभग समाप्त हो गई। माओ का मानना था कि एक गौरैया साल में चार किलो अनाज खा जाती है, जिससे चीनियों को भुखमरी का शिकार होना पड़ता है। गौरैया को ढूंढ़ा जाने लगा और जहां भी बैठी दिखती, चीनी लोग ड्रम, टिन, थालियां बजाते हुए उसकी तरफ दौड़ पड़ते थे। लोग गौरैया का पीछा करते रहते थे, जब तक कि वह थककर गिर न जाए। या तो वह खुद ही दम तोड़ देती या उसे बेरहमी से मार डाला जाता था। वहां गौरैया के खात्मे के बाद टिड्डियों और फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़ों की संख्या तेजी से बढ़ी। किसानों की फसलें चौपट हो गईं। चीन में भयंकर अकाल पड़ा, जिससे 1.5 करोड़ चीनी भूख से मारे गए, तब माओ को गौरैया की अहमियत समझ में आई। चीन ने रूस से करोड़ों की संख्या में गौरैया आयात करके पुनः बसाया। अपने देश में भी अब गौरैया को बचाने के लिए अभियान चलाना चाहिए। मैंने लखनऊ में गौरैया संरक्षण के लिए प्रयास किए हैं और परिणाम बहुत सुखद है। मैं 2012 में अपना मकान बनवा रहा था। मकान पूरा बना भी नहीं था कि मुझे गौरैया का एक जोड़ा दिखाई पड़ा। मैंने तुरंत बाजार से एक मिट्टी का गुल्लक मंगाया और एक छेद बनाकर टांग दिया। बस क्या था, गौरैया के जोड़े ने इसे बसेरा बना लिया। गौरैया ने तिनके लाकर घोंसले में रखे और अंडे दिए। थोड़े दिन में चूजे निकल आए।

मैंने प्लाईवुड के घोंसले बनवाए और बरामदे में टांग दिए। अब मेरे यहां 45 घोंसले हैं। इनके लिए हमेशा बाजरा, काकुन, टूटे चावल और रोटी के महीन टुकड़े रखे जाते हैं और पानी की व्यवस्था की जाती है। मैंने घर के सामने ग्रीन बेल्ट में काफी पेड़ लगाए, जिससे गौरैया के लिए अनुकूल वातावरण मिल गया और उनकी संख्या 100 के पार हो गई है। अब मेरा घर गौरैया कॉलोनी बन चुका है और हमारा परिवार गौरैया के साथ रहता है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

मनसा वाचा कर्मणा

भक्त को संशय नहीं होता

भागवत में लिखा है कि सुदामा जी जब भगवान के यहां से चले, तो भगवान ने कुछ नहीं दिया। सम्मान तो किया, किंतु दिया कुछ नहीं। दूसरा कोई होता, तो नाराज हो जाता कि अब आपके यहां नहीं आऊंगा। आप क्या मित्र हो, मैं गरीब ब्राह्मण हूं, और मुझे कुछ नहीं दिया। मगर जैसे द्वारिकाधीश हैं कृष्ण, तो सुदामा भी द्वारिकाधीश हैं, भले महल नहीं है। शास्त्रों ने लिखा है कि ईश्वर को जानने वाला ईश्वर हो जाता है *ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति*।

सुदामा ब्रह्म को पहचानने वाले संत हैं, वह ब्रह्म के समान हो गए। उन्हें वही आनंद चित्त की अवस्था प्राप्त है, वही श्रद्धा की अवस्था प्राप्त है, जो भगवान श्रीकृष्ण को प्राप्त है। तो सुदामा जी ने मांगा नहीं कुछ भी, आज का कोई होता, तो हंगामा ही कर देता। खरी-खोटी सुनाता। अनशन पर बैठ जाता। सुदामा जी ने भी विचार किया कि भगवान ने कुछ दिया नहीं... कहीं ऐसा तो नहीं कि भगवान गरीब हो गए हैं? वैसे, भगवान तो कभी गरीब नहीं हो सकते। संपूर्णता में जिनको सब कुछ प्राप्त है, उन्हें ही भगवान कहते हैं। भग माने संपूर्ण ऐश्वर्य। धर्म संपूर्ण, वैराग्य संपूर्ण, ज्ञान संपूर्ण। भगवान की गरीबी कैसे आएगी, वह तो समग्र धर्मशाली, धनशाली हैं? ऐसा तो नहीं कि कंजूस हो गए भगवान? फिर सुदामा जी ने सोचा कि ऐसा क्यों सोचें, भगवान तो परम उदार हैं, कल्याणकारी गुणों के समुद्र हैं। प्रेम, लगाव, शक्ति के समुद्र हैं। भगवान कभी पाप नहीं करते।

जितने दुर्भाव हमारे मन में आते हैं, उनका मूल कारण पाप ही है। चाहे क्रोध हो, लोभ हो, द्वेष हो, सबके मूल में बैठा है पाप। भगवान कैसे अनुदार हो जाएंगे, वह तो परमोदार हैं? सुदामा जी ने समाधान निकाला, अद्भुत भगवान की कृपा है, भगवान ने हमारे परित्याग को, हमारा जो समष्टि के लिए समर्पित जीवन है, रोम-रोम से, बाहर से भीतर से जो हमारा समुदाय की सेवा के लिए जीवन है, उससे कहीं हम अलग न हो जाएं। कहीं हम भोगी न हो जाएं, कहीं हम संतुष्ट न हो जाएं, कहीं हमारा भजन न छूट जाए, इसलिए भगवान ने नहीं दिया। कहीं हमारी विशिष्टता लुप्त न हो जाए, कहीं हम समाज के लिए जीना छोड़कर अपने लिए ही न जीने लगें, इसीलिए भगवान ने हमें कोई भौतिक संसाधन नहीं दिया।

सुदामा जी को कृष्ण ने चलते समय कुछ नहीं दिया, तो वह सोचते हैं, कहीं हम भोगी न हो जाएं, कहीं हम संतुष्ट न हो जाएं, कहीं हमारा भजन न छूट जाए, इसलिए भगवान ने कुछ नहीं दिया।

यह विचारों की महान अवस्था है, इससे बड़ा व्यवहार क्या होगा! सुदामा जी ने कितना बड़ा समाधान किया। अब तो लोग ऋण लेकर व्यक्तिगत संपत्ति बना लेते हैं, फिर दिवालिया घोषित हो जाते हैं। बड़े-बड़े शहरों में हजारों लोग पूर्ण संपत्तिवान होकर भी अपना दिवाला निकाल रहे हैं। ऐसे लोगों को कब और कैसे सुकून मिलेगा? कैसे शांति मिलेगी? कभी नहीं मिलेगी।

यहां तो द्वारिकाधीश ने अद्भुत प्रेम की वर्षा करके, समर्पण की धारा बहा दी है।

रामानंदाचार्य स्वामी श्रीरामनरेशाचार्य

द्रौपदी मुर्मु | राष्ट्रपति, भारत

मनुष्य अपनी नियति अथवा भाग्य का निर्माण स्वयं कर सकता है और यह निर्माण कार्य वर्तमान में ही संभव है, अतीत में नहीं। वर्तमान में किया गया सत्कर्म ही अच्छे भविष्य का स्वरूप निर्धारित करता है।

स्थानीय टैक्सियों पर भारी कैब सेवाएं

पिछले एक दशक के दौरान तीसरी दुनिया के देशों में ओला, उबर जैसी कैब एग्रीगेटर सेवाएं तेजी से फैली हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि परिवहन के स्थानीय साधन, जैसे टैक्सी, टेंपो, बस आदि का धंधा करीब-करीब खत्म होता जा रहा है। कैब एग्रीगेटर एप से बुक की जाती हैं, जिससे मुसाफिरों को घर बैठे ही टैक्सी सेवाएं मिल जाती हैं। मगर ऑस्ट्रेलिया के टैक्सी चालकों को यह मंजूर नहीं था कि बाहर की कोई सेवा-प्रदाता कंपनी उनकी हकतलफी करे। इसी कारण उन्होंने उबर पर मुकदमा कर दिया था। इस मुकदमे में कहा गया था कि साल 2012 में उबर के ऑस्ट्रेलिया में आने के बाद स्थानीय टैक्सी उद्योग को भारी नुकसान हुआ है और लाइसेंस प्राप्त टैक्सी ड्राइवर सड़क पर आ गए हैं। कई ड्राइवरों के जीविकोपार्जन का मुख्य जरिया ही उनसे छिन गया। समाचार है कि आठ हजार से ज्यादा टैक्सी ड्राइवरों और टैक्सी मालिकों ने साल 2019 में एप आधारित एग्रीगेटर के खिलाफ कानूनी लड़ाई लड़ने का मन बनाया, जिसका उबर ने भी कानूनी जवाब दिया। मगर अब अदालत ने फैसला सुनाते हुए उबर को ऑस्ट्रेलिया में टैक्सी ड्राइवरों को बतौर हर्जाना 178 मिलियन अमेरिकी डॉलर, यानी करीब 15 अरब रुपये देने का निर्देश दिया है। इस निर्देश को ऑस्ट्रेलिया के कानूनी इतिहास में पांचवां सबसे बड़ा फैसला बताया जा रहा है।

स्पष्ट है, इससे वहां के स्थानीय टैक्सी उद्योग को फिर से सांसें मिल जाएंगी। यह सबक है उन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए, जो स्थानीय सेवाओं को लीलने के लिए कुछ भी करने को तैयार रहती हैं। आदर्श स्थिति तो यही होती कि उबर कंपनी स्थानीय ड्राइवरों की समस्याओं को समझती और समय-पूर्व उचित कदम उठाती, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया, जिस कारण यह मामला ऑस्ट्रेलिया की अदालत में पहुंच गया। उल्लेखनीय है कि उबर की शुरुआत साल 2009 में हुई और इसका मुख्यालय सैन फ्रांसिस्को में है। यह कंपनी अभी दुनिया के 70 देशों और 10,000 से अधिक शहरों में अपनी सेवाएं दे रही है। अभी जिस तरह से ऑस्ट्रेलिया में इसे मुंह की खानी पड़ी है, उससे यह आशंका बनी है कि कहीं यह फैसला अन्य देशों को भी मुआवजा लेने के लिए प्रेरित न करे? अगर ऐसा होता है, तो आने वाले दिनों में हम कई देशों की अदालतों में उबर जैसी एप आधारित कैब सेवाओं के खिलाफ कानूनी मुकदमे देख सकते हैं। इससे विदेशी कंपनियों की सेहत पर स्वाभाविक नुकसान पहुंचेगा। मगर सच यह भी है कि हर राष्ट्र अपना हित सबसे ऊपर ही रखता है।

जंग बहादुर सिंह, टिप्पणीकार

अनुलोम-विलोम

कैब सेवा

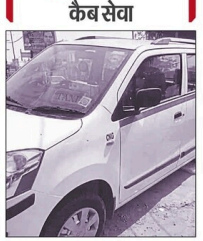

खत्म हुई टैक्सी ड्राइवरों की मनमानी

यह सही है कि स्थानीय व्यापार को विदेशी कंपनियां निगल रही हैं। मगर इसका एकमात्र कारण सरकारी नीतियां नहीं हैं, बल्कि हमें अपने गिरेबान में भी झांकना चाहिए। अपने असम प्रवास के दौरान मैंने कई बार ऑटो, टैक्सी वालों को कुछ स्थानों पर आवागमन के लिए बुक करने का प्रयास किया, लेकिन हर बार उन्होंने जो किराया मांगा, वह नितांत अतार्किक और स्थानीय प्रचलित दर से चार-पांच गुना अधिक था। फिर, कोई पर्यटक भला ओला या उबर क्यों न बुक करेगा? यही परेशानी होटल के कमरे, बस आदि बुक करने में आती है। ग्राहकों या सेवा लेने वालों का विश्वास टूटता है, तो व्यापारी या मेहनतकशों पर दोहरी मार पड़ती है। उसे अपने व्यवसाय का नुकसान तो होता ही है, अपने जीविकोपार्जन के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों का पिछलग्गू भी बनना पड़ता है। सेवाएं भी कंपनी के नियमों के अनुसार देनी पड़ती हैं, और मुफ्त में मोटा कमीशन भी बिना कोई काम किए इन कंपनियों को देना पड़ता है। इस ओर उनकी दृष्टि जानी चाहिए। अपने ग्राहकों का विश्वास जीतिए, अन्यथा विदेशी कंपनियां ही व्यापार करेंगी, जिसमें लागत व श्रम तो आपका होगा, पर मुनाफा उनका।

मनोज भारत, टिप्पणीकार

मनमानी पर लगाम

एप वाली टैक्सी सेवाएं हम मध्यमवर्गीय लोगों के अनुकूल हैं। घर बैठे इनको बुक किया जा सकता है, किराये में पारदर्शिता होती है, और सेवाएं पसंद न आने पर शिकायत निपटारे का उचित मंच मिलता है। आखिर और क्या चाहिए हमें? जब से ये सेवाएं आई हैं, टैक्सी और ऑटो वालों की मनमानी खत्म हो गई है। यहां तक कि अब इनकी मोटरसाइकिल सेवाएं भी शुरू हो चुकी हैं, जिसमें पांच-छह किलोमीटर की दूरी भी बहुत कम पैसे देकर नापी जा सकती है। जबकि पहले, टैक्सी या ऑटो स्टैंड पर वाजिब किराये के लिए मोलभाव करने पड़ते थे। पिछले दिनों की पटना यात्रा का जिक्र कर रहा हूं। पटना एयरपोर्ट से बाहर आने पर जब मैंने एक टैक्सी ड्राइवर से अपने गंतव्य तक पहुंचाने का किराया पूछा, तो उसने मुंह खोलते ही 300 रुपये मांग डाले, जबकि वह दूरी करीब चार-पांच किलोमीटर की थी। मैंने तुरंत उबर टैक्सी बुक की, और महज 140 रुपये में। जब मैंने गाड़ी बुक कर ली, तब वह पहले 200 रुपये और बाद में 160 रुपये में चलने की चिरौरी करने लगा। अगर वह यही पैसे पहले बोलता, तो संभव है कि मैं उसके साथ चल पड़ता। मगर महत्वाकांक्षा उस पर भारी पड़ गई। यही कहानी कमोबेश सभी जगहों की है। विदेशी कंपनियों ने इन ड्राइवरों की मनमानी खत्म कर दी है।

नरसिंह नाथ, टिप्पणीकार

दैनिक जागरण
परिवार सदस्यों को एकजुट रखने वाली कड़ी है

सुप्रीम कोर्ट का इन्कार

यह अच्छा हुआ कि सुप्रीम कोर्ट ने नागरिकता संशोधन कानून यानी सीएए की अधिसूचना के अमल पर रोक लगाने से इन्कार कर दिया। यह इसलिए स्वागतयोग्य है, क्योंकि किसी भी कानून और उसके प्रविधानों पर फैसला उनकी संवैधानिकता की जांच-परख के बाद ही होना चाहिए। इस पहलू पर जोर दिया जाना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि कुछ वर्ष पहले तीन कृषि कानूनों की संवैधानिकता पर विचार किए बिना ही सुप्रीम कोर्ट ने उनके अमल पर रोक लगा दी थी। इसका नतीजा यह हुआ कि कृषि कानूनों का विरोध करने वाले संगठनों एवं राजनीतिक दलों को यह माहौल बनाने में आसानी हुई कि कृषि कानून सही नहीं। इसी माहौल ने ऐसी परिस्थितियां बनाईं कि सरकार को न चाहते हुए भी इन कानूनों को वापस लेना पड़ा। जैसे कृषि कानूनों के खिलाफ ढेरों याचिकाएं दायर की गई थीं, वैसे ही नागरिकता कानून के विरुद्ध भी। इस कानून को लेकर दायर याचिकाओं की संख्या 237 है। इनमें से केवल एक उसके समर्थन में है, शेष सब विरोध में। विरोध में याचिकाएं दायर करने वालों में राजनीतिक दल और नेता तो हैं ही, हर छोटे-बड़े सरकारी फैसले पर सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाने वालों का वह समूह भी है, जिसने जनहित याचिकाओं को एक उद्योग में तब्दील कर दिया है।

नागरिकता संशोधन कानून के विरोध में खड़े लोगों की दलील यह है कि आखिर इसे लोकसभा चुनावों के पहले क्यों लागू किया जा रहा है। क्या चुनाव के पहले किसी कानून को लागू करना निषेध है? प्रश्न यह भी है कि चार वर्ष पहले जब कहीं कोई चुनाव नहीं थे, तब विपक्षी दलों ने नागरिकता संशोधन कानून के खिलाफ आसमान सिर पर क्यों उठा लिया था? उन्होंने इस कानून के खिलाफ न केवल लोगों को गुमराह किया, बल्कि उन्हें सड़कों पर उतरने के लिए भी उकसाया। इस कानून के खिलाफ देश भर में केवल विरोध प्रदर्शन ही नहीं हुए, बल्कि उस दौरान बड़े पैमाने पर आगजनी और तोड़फोड़ भी की गई। दिल्ली में तो शाहीन बाग इलाके में एक व्यस्त सड़क को घेरकर और आवाजाही ठपकर महीनों तक धरना दिया गया। इसी धरने के कारण दिल्ली में भीषण दंगे हुए, जिसमें 50 से अधिक लोग मारे गए। इस पर हैरानी नहीं कि शाहीन बाग धरने को खाद-पानी देने वाले ही नागरिकता संशोधन कानून के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट पहुंचे हैं। वे यह जान रहे हैं कि इस बार लोग उनके इस झूठे दुष्प्रचार में नहीं फंसने वाले कि इस कानून के लागू होने से भारतीय मुसलमानों की नागरिकता खतरे में पड़ जाएगी। इस कानून के विरोधियों को यह समझ आए तो अच्छा कि काठ की हांडी बार-बार नहीं चढ़ती। उन्हें अपनी यह बेतुकी मांग भी छोड़नी चाहिए कि नागरिकता कानून अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश के बहुसंख्यकों और उनके हाथों प्रताड़ित वहां के अल्पसंख्यकों पर समान रूप से लागू हो। आखिर पीड़ित और आक्रांता के लिए एक जैसा कानून कैसे हो सकता है?

चुनाव प्रबंधन

भारत निर्वाचन आयोग की उत्तराखंड में पहले चरण में लोकसभा चुनाव कराए जाने की घोषणा के साथ ही सरकारी मशीनरी तैयारियों में जुट गई है। सही भी है, लोकतंत्र के सबसे बड़े इस उत्सव को संपन्न कराने में किसी भी स्तर पर कोई कमी ना रहे और चुनाव निर्विघ्न हों, इसके लिए तैयारियों को प्रत्येक स्तर पर समय रहते परखना जरूरी है। यद्यपि, समूचा उत्तराखंड शांत है, लेकिन फिर भी पुख्ता चुनाव प्रबंधन जरूरी है। उत्तराखंड विषम भूगोल वाला राज्य है, ऐसे में चुनाव को लेकर व्यवस्थागत चुनौतियां भी कम नहीं हैं। विशेषकर पर्वतीय जिलों के सुदूरवर्ती क्षेत्रों में चुनावी प्रबंध करना आसान नहीं रहता है। पहाड़ी जिलों के कई इलाकों में अभी भी बर्फ के कारण रास्ते बंद हैं, उम्मीद की जा रही है कि मतदान की तारीख तक बर्फ पिघल चुकी होगी। इससे चुनाव पार्टियों को यहां तक पहुंचाना अपेक्षाकृत सुगम हो जाएगा। प्रशासनिक मशीनरी के साथ ही राजनीतिक दल भी महासमर के लिए कमर कस रहे हैं। इस सबके बीच इस बात का ध्यान रखना जरूरी है चुनाव अवधि में जनता से जुड़े रूटीन कामकाज निर्बाध चलते रहें। जिन योजनाओं पर काम चल रहा है उनकी गति धीमी न पड़ने पाए। आमतौर पर देखने में आता है कि चुनावों के दौरान जो मशीनरी निर्वाचन संबंधी कार्यों से अलग रखी जाती है, वह उदासीन हो जाती है। इसके चलते रोजमर्रा के कार्य अपेक्षित गति से आगे नहीं बढ़ पाते हैं। चूंकि आला अधिकारी चुनावी व्यवस्थाओं में जुटे होते हैं, इसलिए वह इस ओर कम ही ध्यान दे पाते हैं। मातहतों की जिम्मेदारी है कि वे ईमानदारी और पारदर्शिता के साथ योजनाओं को आगे बढ़ाएं। देखने में यह भी आता है कि चुनाव के दौरान अतिक्रमण की समस्या बढ़ जाती है। अतिक्रमणकारियों को लगता है कि इस अवधि में रोक-टोक करने वाला कोई नहीं है, इसलिए यह प्रवृत्ति ज्यादा देखने को मिलती है।

गोपनीयता के आवरण में चुनावी चंदा

सुरेंद्र किशोर

समय के साथ देश में बहुत कुछ बदल गया, लेकिन चुनावी चंदे में पारदर्शिता का अभाव जस का तस कायम है

अवधेश राजपूत

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। लोकतंत्र की सफलता चुनावी प्रक्रिया में स्वतंत्रता, पारदर्शिता एवं निष्पक्षता से निर्धारित होती है। चूंकि चुनाव एक खर्चीली प्रक्रिया भी है तो इस कारण इसमें चुनावी चंदे की भूमिका अहम हो जाती है। इसी चंदे से जुड़े चुनावी बांड का मुद्दा इन दिनों सुर्खियों में छाया हुआ है। भारत में देसी-विदेशी चुनावी चंदे को लेकर पर्दादारी की परपंरा दशकों पुरानी है। विदेशी चंदे के बारे में 1967 में तत्कालीन केंद्रीय गृहमंत्री यशवंतराव बलवंतराव चव्हाण ने लोकसभा में यह जानकारी दी थी, 'इस देश के राजनीतिक दलों को मिले विदेशी चंदे के बारे में भारत के केंद्रीय गुप्तचर विभाग की रपट को प्रकाशित नहीं किया जाएगा, क्योंकि इसके प्रकाशन से अनेक व्यक्तियों और दलों के हितों की हानि होगी।' इससे पहले विपक्षी दलों के कुछ नेताओं ने उसके प्रकाशन की मांग की थी। इस प्रकार उस समय केंद्र में सत्तारूढ़ इंदिरा गांधी सरकार ने यह परंपरा स्थापित कर दी कि सियासी चंदे के मामले में देश को हानि भले हो जाए, लेकिन राजनीतिक दलों और नेताओं को कोई नुकसान नहीं होना चाहिए। वह परंपरा कमोबेश आज भी देश में कायम है। ऐसे में इस पुरानी मांग पर एक बार फिर गौर करने की जरूरत है कि मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के चुनाव प्रचार के जरूरी खर्चे खुद सरकार उठाए। 1967 के आम चुनाव में सात राज्यों में कांग्रेस हार गई थी। तब तक लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव साथ-साथ ही होते थे। याद रहे कि 1967 में आम चुनाव के कुछ महीनों के भीतर दल-बदल के कारण दो अन्य राज्यों उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की कांग्रेस सरकारें भी गिर गई थीं। उसके बाद वहां भी गैर-कांग्रेसी सरकारें गठित हो गई थीं। चौथे आम चुनाव में लोकसभा में भी कांग्रेस का बहुमत कम हो गया था। यानी, आज का यह तर्क सही नहीं है कि विविधताओं वाले इस देश में लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव अलग-अलग ही होने चाहिए। जब साथ चुनाव होने पर भी परिणाम अलग-अलग आते ही थे तो एक बार फिर एक ही साथ चुनाव कराने में नुकसान क्या है? असल में इसके लाभ अधिक हैं।

अतीत की ओर देखें तो 1967 की चुनावी हार पर तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी चिंतित हो उठी थीं। पहले से ही उन्हें यह अपुष्ट खबर मिल रही थी कि इस चुनाव में विदेशी धन का इस्तेमाल हुआ है। तब इंदिरा गांधी को ऐसा लगा कि विदेशी धन सिर्फ विपक्षी दलों को मिला। इंदिरा सरकार ने केंद्रीय गुप्तचर विभाग को इसकी जांच का जिम्मा सौंपा। जांच रपट सरकार को सौंप दी गई, लेकिन रपट को सरकार ने दबा दिया। ऐसा इसलिए, क्योंकि वह रपट सत्तारूढ़ दल के लिए भी असहज करने वाली थी। जांच के दौरान इस बात के भी सुबूत मिले थे कि कांग्रेस के ही कुछ नेताओं ने अमेरिका से तो कुछ दूसरे कांग्रेस नेताओं ने सोवियत संघ से पैसे लिए थे। इस रपट को बाद में अमेरिकी अखबार 'द न्यूयार्क टाइम्स' ने छाप दिया था। इस रपट के अनुसार सिर्फ एक राजनीतिक दल को छोड़कर लगभग सभी प्रमुख दलों ने विदेशी चंदा स्वीकार किया था। गुप्तचर विभाग की उक्त रपट के अनुसार अमेरिकी गुप्तचर एजेंसी और कम्युनिस्ट दूतावासों ने राजनीतिक दलों को काफी पैसे दिए। उन दिनों विश्व के दो खेमों के बीच शीत युद्ध जारी था। कम्युनिस्ट और गैर-कम्युनिस्ट देशों ने भारत में अपने-अपने खास समर्थक बना रखे थे। यह किसी से छिपा नहीं रहा कि उस दौर में एक खेमे का नेतृत्व अमेरिका और दूसरे खेमे का नेतृत्व सोवियत संघ कर रहा था। न्यूयार्क टाइम्स की इस सनसनीखेज रपट पर 1967 के प्रारंभ में लोकसभा में बहुत तीखी बहस हुई। इसके परिणामस्वरूप तमाम भारतीय अखबारों में भी इस खबर को बाद में काफी कवरेज मिला। जो खबर न्यूयार्क टाइम्स ने ब्रेक की थी, वह खबर भारतीय मीडिया क्यों नहीं ब्रेक कर सका? क्या तब भी 'गोदी मीडिया' था? इस समय एक तबका गोदी मीडिया का आरोप भारतीय मीडिया को लेकर लगा रहा है। उन्हीं दिनों यह खबर भी आई थी कि इस देश के ही एक बड़े उद्योगपति ने तकरीबन पांच दर्जन सांसदों को अपने 'पे रोल' पर रखा हुआ था।

संसद में स्वतंत्र पार्टी के एक सदस्य ने गृहमंत्री चव्हाण से पूछा कि क्या वह गुप्तचर विभाग की रपट को प्रकाशित कराएंगे ताकि राजनीतिक दलों को जनता के बीच सफाई पेश करने का मौका मिल सके? रपट के प्रकाशन से इन्कार करते हुए चव्हाण ने यह जरूर कहा था कि केंद्र सरकार चुनाव आयोग की मदद से संतानम समिति के उस सुझाव पर विचार कर रही है, जिसमें विभिन्न राजनीतिक दलों को हरसंभव स्रोतों से प्राप्त होने वाली धनराशि की जांच की बात कही गई है। इस देश का दुर्भाग्य ही रहा कि जनता आज भी संतानम समिति की रपट को लागू करने की आस लगाए बैठी है।

समय के साथ राजनीति में काले धन के इस्तेमाल की खबरें बेहद आम होती गईं। कई मामलों में तो स्थिति यह हो गई है कि चुनाव में बाहुबल से अधिक प्रभावी भूमिका धनबल की होती जा रही है। कुछ समय पहले एक विधानसभा चुनाव में एक उम्मीदवार को दो हजार रुपये के नोट मतदाताओं के बीच बांटते हुए टीवी चैनलों पर दिखाया गया था। अब तो इस देश के छोटे-छोटे दलों के नेता भी चार्टर्ड प्लेन से घूम रहे हैं। चुनाव में काले धन के बढ़ते असर से राजनीति की शुचिता प्रभावित हो रही है। परिणामस्वरूप राजनीतिक कार्यपालिका भी दूषित हो रही है। प्रशासनिक कार्यपालिका के बारे में तो क्या ही कहा जाए। विशेषज्ञ बताते हैं कि एक स्तर पर भ्रष्टाचार विकास की गति को अपेक्षित रूप से बढ़ने नहीं दे रहा है। गुणात्मक एवं टिकाऊ ढांचा निर्माण की कोई गारंटी नहीं है। चुनावी चंदा भ्रष्टाचार का एक बड़ा स्रोत बना हुआ है। इसी को देखते हुए चुनावी चंदे में पारदर्शिता लाने के लिए चुनावी बांड की व्यवस्था की गई थी, लेकिन भली मंशा वाली यह योजना राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में अपेक्षित परिणाम न देकर खुद विवादों के घेरे में घिर गई।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)
response@jagran.com

नागरिकता कानून पर बेतुकी आपत्ति

राजीव सचान

तीन पड़ोसी देशों के सभी लोगों को सीएए के दायरे में लाने की मांग कुतर्क के अलावा और कुछ नहीं

दुष्प्रचार की उपज है सीएए का विरोध। प्रेट्र

सुप्रीम कोर्ट ने नागरिकता संशोधन कानून यानी सीएए पर रोक लगाने से मना कर वकीलों के उस समूह को कुछ समय के लिए ही सही, अवश्य निराश किया होगा, जिन्होंने शीर्ष अदालत को एक तरह से तीसरे और सर्वोच्च सदन में बदल दिया है। इस कानून के खिलाफ करीब दो सौ से अधिक याचिकाएं दायर की गई हैं। इनमें एक याचिका उस इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग की भी है, जो मोहम्मद अली जिन्ना की मुस्लिम लीग का छद्म रूप है। स्पष्ट है कि इतनी अधिक याचिकाओं के कारण नागरिकता कानून की संवैधानिकता पर लंबी सुनवाई चलेगी। सीएए पर आपत्तियों की कमी नहीं। एक आपत्ति यह है कि इस कानून के तहत अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश के मुसलमानों को भारतीय नागरिक बन सकने की वैसी सुविधा नहीं दी गई, जैसी इन देशों के हिंदुओं, सिखों, जैनों, बौद्धों, पारसियों और ईसाइयों को दी गई है। प्रश्न यह है कि क्या भारत का संविधान देश के बाहर के लोगों पर भी लागू होता है? यह प्रश्न इसलिए, क्योंकि नागरिकता कानून का तो भारत के किसी नागरिक से लेना-देना ही नहीं। इसका संबंध तो केवल तीन पड़ोसी देशों के लोगों से है। सीएए पर बहस के बीच यह सवाल उठना ही चाहिए कि क्या एक संप्रभु राष्ट्र के रूप में भारत को यह तय करने का अधिकार नहीं कि वह किन देशों के लोगों को सरलता से नागरिकता दे और किन देशों के लोगों को अलग प्रक्रिया का पालन करके?

कहना कठिन है कि नागरिकता कानून के तहत तीन पड़ोसी देशों के मुसलमानों को नागरिकता देने के लिए अलग और वहां के हिंदुओं, सिखों, जैनों, बौद्धों, पारसियों और ईसाइयों के स्तर पर अलग नियमों को लेकर उठाए जा रहे प्रश्नों पर सुप्रीम कोर्ट किस नतीजे पर पहुंचेगा, लेकिन क्या यह विचित्र नहीं कि सीएए को लेकर तो यह जिद की जा रही है कि भारत के तीन पड़ोसी देशों के बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों को एकसमान अधिकार दिए जाएं, लेकिन बड़ी चतुराई से इसकी अनदेखी की जा रही है कि देश के नागरिकों पर लागू होने वाले कई कानून ऐसे हैं, जो उनमें खुला भेद करते हैं और तार्किक वर्गीकरण के संवैधानिक सिद्धांत का भी उल्लंघन करते हैं। ऐसा ही एक कानून है, शिक्षा अधिकार कानून। इस कानून के तहत बहुसंख्यकों के शिक्षा संस्थान अलग नियमों से संचालित हो रहे हैं और अल्पसंख्यकों के अलग नियमों से। आखिर सबको शिक्षित करने के अभियान में सभी समुदायों के शिक्षा संस्थानों को एकसमान तरीके से सहयोग क्यों नहीं देना चाहिए? क्या कारण है कि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय उस तरह संचालित नहीं होता, जैसे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय संचालित किया जा रहा है? क्या सीएए को विभेदकारी बताने वाले यह कहने का साहस करेंगे कि अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के शिक्षा संस्थानों के संचालन के तौर-तरीके अलग-अलग नहीं होने चाहिए?

आम तौर पर जिन्हें नागरिकता कानून में खोट नजर आती है, उन्हें ही समान नागरिक संहिता का विचार डराता है या फिर यह कहें कि इस संहिता पर कोई पहल होते ही वे अपने समुदाय के लोगों को डराने में लग जाते हैं। आखिर देश के बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों को विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, गोद लेने आदि के अधिकार एकसमान क्यों नहीं होने चाहिए? आखिर देश के सभी नागरिकों में भेद न करने वाली समान नागरिक संहिता के मामले में देश के बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों में भेद करने की जिद क्यों की जा रही है? कायदे से समान नागरिक संहिता का निर्माण आजादी के बाद तभी हो जाना चाहिए था, जब हिंदू कोड बिल लाया गया था। यह बिल हिंदू समुदाय की कुरीतियों को दूर करने के लिए लाया गया था, लेकिन क्या कुरीतियां केवल हिंदू समाज में ही थीं? क्या जैसे सामाजिक सुधार की आवश्यकता हिंदू समुदाय को थी, वैसी ही अन्य समुदायों को नहीं थी? प्रश्न यह है कि क्या यह अब भी नहीं है? भारत के अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों में भेद करने वाला एक कानून वह भी है, जो सरकारों को हिंदू मंदिरों पर नियंत्रण करने और उन पर टैक्स लगाने का अधिकार देता है। ऐसा कोई कानून अन्य धार्मिक स्थलों को लेकर नहीं है। क्यों नहीं है, इसका जवाब किसी के पास नहीं। या तो ऐसा कोई कानून सभी समुदायों के धार्मिक स्थलों को लेकर होना चाहिए या फिर मंदिरों को सरकारी कब्जे से मुक्त किया जाना चाहिए। क्या ऐसा कुछ है कि अन्य समुदाय यानी अल्पसंख्यक तो अपने धार्मिक स्थलों का नियमन और संचालन करने में सक्षम हैं, लेकिन हिंदू समुदाय अर्थात बहुसंख्यक समाज ऐसा करने में नाकारा है? आखिर तथाकथित सेक्युलर भारत के अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों में ऐसा खुला भेद करने वाला कोई कानून अस्तित्व में क्यों है? क्या इस कानून को तार्किक वर्गीकरण या उचित विभेद वाले कानून की वैसी ही संज्ञा दी जा सकती है, जैसी आरक्षण संबंधी कानूनों के मामले में दी जाती है?

नागरिकता संशोधन कानून के दायरे में तीन पड़ोसी देशों के बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों में भेद न करने की मांग करने वाले भारत के विभाजन की परिस्थितियों की भी अनदेखी कर रहे हैं। आखिर जिन लोगों ने वोट के जरिये और साथ ही जोर-जबरदस्ती का सहारा लेकर भारत का विभाजन कराया, उनमें और उन लोगों में तार्किक-उचित विभेद क्यों नहीं किया जाना चाहिए, जिन पर पाकिस्तान जबरन थोपा गया? ये वे अभागे लोग हैं, जिनके बारे में यह कहना कठिन है कि वे पाकिस्तान और बांग्लादेश में कब तक बचे रहेंगे। सवाल यह भी है कि क्या भारत कोई धर्मशाला है, जो हर किसी को अपने यहां आने और बस जाने की सहूलियत दे दे। वैसे धर्मशाला के भी अपने नियम होते हैं।

(लेखक दैनिक जागरण में एसोसिएट एडिटर हैं)
response@jagran.com

ऊर्जा

अनुशासन का महत्व

जीवन को सार्थकता प्रदान करने वाले सूत्रों में अनुशासन अत्यंत महत्वपूर्ण है। अनुशासन जीवन में नूतन ऊर्जा और आलोक प्रदान कर उसकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। अनुशासन हमारे जीवन की केंद्रस्थ धुरी है। एक अनुशासित व्यक्ति के अंदर आज्ञाकारी होने का गुण होता है। इससे नियमित रूप से कार्य करने की क्षमता का विकास होता है। अनुशासन द्वारा कर्तव्य और अधिकार का समुचित ज्ञान होता है। यह एक ऐसा गुण है जिससे मनुष्य सर्वप्रिय बन जाता है। पारिवारिक और सामाजिक जीवन में तो कहीं ज्यादा अनुशासन की आवश्यकता होती है। यदि अनुशासन का पालन नहीं किया जाए तो हमारा जीवन दुर्गति को प्राप्त हो जाएगा। महात्मा गांधी ने कहा था, 'सारे अनुशासनों की जड़ व्यक्तिगत अनुशासन है। जब तक कोई भी व्यक्ति अपने आप अनुशासन और नियम पालन में बंध नहीं जाता, तब तक उसे दूसरे से वैसा कराने की आशा करना व्यर्थ है।'

अनुशासन हमारे जीवन में सभी व्यवहारों के स्वरूप को संदर्भित करता है, जिसका पालन किया जाना चाहिए। जब इन कारकों को एकीकृत किया जाता है, तो वे जीवन में घटनाओं के सामाजिक और व्यक्तिगत क्रम को बनाए रखने में सहायता करते हैं। यह जवाबदेही और विश्वसनीयता की भावना उत्पन्न करता है और लोगों को अपने कार्यों की जिम्मेदारी लेने के लिए प्रोत्साहित करता है।

अनुशासन के बिना जीवन उस नाव की तरह है, जिस नाव पर कोई नाविक नहीं होता और वह नाव लहरों की भंवर में फंसकर राह भटक जाती है। वर्तमान दौर में लोग इतने अधिक अनुशासनहीन होने लगे हैं कि उन्हें अनुशासन की दीक्षा देने की नौबत आ गई है। प्रकृति के अनुसार अनुशासन का अर्थ सीखने के लिए हर किसी के पास अलग-अलग समय और क्षमता है। इसलिए, कभी भी हार न मानें और हमेशा अनुशासन में रहने की कोशिश करें।

नृपेंद्र अभिषेक नृप

'रेगिस्तान के जहाज' का संरक्षण

सुधीर कुमार

ऊंट खाद्य सुरक्षा, पोषण और आर्थिक विकास के साथ-साथ एक मजबूत सांस्कृतिक और सामाजिक महत्व रखते हैं

संयुक्त राष्ट्र ने 2024 को 'अंतरराष्ट्रीय कैमलिड्स वर्ष' घोषित किया है। ऊंट जिस प्रजाति समूह का हिस्सा हैं, जिन्हें आमतौर पर कैमलिड्स के नाम से जाना जाता है। यह ऊंटों की भूमिका के बारे में जागरूकता बढ़ाने तथा उनके संरक्षण का एक अनूठा अवसर प्रस्तुत करता है।

ऊंट खाद्य सुरक्षा, पोषण और आर्थिक विकास के साथ-साथ दुनिया भर के समुदायों के लिए एक मजबूत सांस्कृतिक और सामाजिक महत्व रखते हैं। ऊंट भूख के खिलाफ लड़ाई, गरीबी उन्मूलन, महिलाओं के सशक्तीकरण और स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र के सतत उपयोग को बढ़ावा देने में उनका योगदान अतुलनीय है। वास्तव में ऊंट एक बहुउद्देशीय जानवर है, जिसका उपयोग दूध, मांस, जैविक उर्वरक के उत्पादन में होता है। साथ ही विभिन्न त्योहारों एवं पर्यटन की दृष्टि से भी इनका व्यापक महत्व है। वहीं रेगिस्तान या शुष्क क्षेत्रों में सवारी करने और सामान ढोने के लिए परिवहन के सशक्त रूप में तथा विभिन्न कृषि कार्यों जैसे जोताई एवं पानी ढोने या निकालने में ऊंट का प्रयोग किया जाता है। ऊंट ऐसी जलवायविक दशाओं में भी शान से जीते हैं, जहां अन्य जीवों का जीवनयापन संभव नहीं हो पाता है। ऊंट अपने कूबड़ में जमा वसा का उपयोग करके और उसे ऊर्जा में बदलकर लंबे समय तक बिना भोजन या पानी के जीवित रह सकता है। यही वजह है कि सीमित पानी और वनस्पति वाले क्षेत्रों में भी ये बहुतायत में पाए जाते हैं। दूसरी खासियत यह है कि ऊंट गर्म और ठंडे दोनों तरह के चरम वातावरण में रहने के लिए अनुकूलित होते हैं। ऊंट दुनिया के 90 से अधिक देशों में पाए जाते हैं। बैक्ट्रियन (दो कूबड़ वाले ऊंट), ड्रोमेडरी (एक कूबड़ वाले ऊंट), लामा, अल्पाका, गुआनाको और विकुना ऊंट के विभिन्न प्रकार हैं। जंगली ऊंट-कैमलस फेरस-को 2008 में संकटग्रस्त प्रजातियों की 'लाल सूची' में शामिल किया गया था।

भारत में ऊंटों की तादाद लगातार कम हो रही है। भारत की लगभग 84 प्रतिशत ऊंट आबादी राजस्थान में रहती है। 19वीं पशुधन गणना (2012) की तुलना में 20वीं पशुधन गणना (2019) में ऊंट की कुल आबादी चार लाख से घटकर ढाई लाख रह गई है। केंद्रीय पशुपालन विभाग के अनुसार ऊंटों की आबादी में कमी होने का प्रमुख कारण कृषि क्षेत्र में मशीनीकरण के कारण ऊंट की उपयोगिता में कमी, परिवहन के आधुनिक साधनों और सड़क मार्ग के विकास से ऊंट की मांग में कमी, चरागाह भूमि में गिरावट तथा ऊंट पालन में आने वाली कमी है। राजस्थान सरकार ने ऊंट को अपना 'राज्य पशु' घोषित किया है और उनके संरक्षण के लिए ठोस कानून बनाए हैं। ऊंटों के संवर्द्धन और संरक्षण के लिए ठोस प्रयत्न की दरकार है।

(लेखक बीएचयू में शोधार्थी हैं)

मेलबाक्स

अवसान की ओर छद्म सेक्युलरिज्म

'सेक्युलरिज्म की भ्रामक अवधारणा' शीर्षक से लिखे आलेख में प्रणय कुमार ने भारतीय संस्कृति से जुड़े 'धर्म' और 'सत्य' जैसे मानकों को लेकर की जाने वाली भ्रामक व्याख्या की भारतीय संदर्भों में जैसी विवेचना की है, वह सेक्युलरिज्म की ओट में भारतीय संस्कृति को दरकिनार करने वालों को आईना दिखाने वाली है। वस्तुतः, सेक्युलरिज्म 1975 के आपातकाल के बाद भारतीय संविधान में जोड़ा गया ऐसा क्षेपक है, जिसे परिभाषित करने की जरूरत नहीं समझी गई। कालांतर में राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि का साधन बनने वाले छद्म सेक्युलरिज्म से भारत के सांस्कृतिक मानबिंदुओं के प्रति उमड़ने वाली स्वाभाविक आस्था का जैसा ह्रास हुआ, वह राष्ट्रवादियों के लिए चिंता का विषय बन गया। यह अच्छी बात है कि वर्तमान में हमें कुछ शुभ संकेत देखने को मिले हैं। अपने प्रथम कार्यकाल में मोदी सरकार द्वारा लिए गए लोकहितैषी फैसलों से आम जनता में जो विश्वास पनपा, वह मोदी की गारंटी के रूप में आज तक कायम है। मोदी सरकार के दूसरे कार्यकाल में भी राष्ट्रहितैषी मुद्दों को लेकर भाजपा के पक्ष में जैसा माहौल बना है, उससे लगने लगा है कि अब राष्ट्रहित के आगे छद्म सेक्युलरिज्म टिकने वाला नहीं है।

डा. वीपी पांडेय, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)

गलतियों से सबक लें राहुल गांधी

संपादकीय आलेख "राहुल गांधी की कमजोरी" में यह रेखांकित किया गया है कि व्यक्ति अपनी गलतियों से सबक सीखे और उसे दोहराने से बचे तो उसके लिए अच्छा है। राहुल गांधी अपनी गलतियों को सुधारने का कोई प्रयास नहीं कर रहे हैं, बल्कि उसमें इजाफा ही करते चले जा रहे हैं। उनके दिमाग में शक्ति का तात्पर्य और अर्थ की व्याख्या कुछ अलग ही है। बकौल राहुल उन्होंने हिंदू धर्म शास्त्रों का अध्ययन किया है, पर शक्ति का प्रयोग वे केवल सत्ता हासिल करने के लिए ही करना चाहते हैं। इससे कांग्रेस को नुकसान ही होगा। राहुल अब अपनी वाक् शक्ति को लगाम दें। मोदी के लिए जैसे आपत्तिजनक और बेतुके बयान वह देते आए हैं, उससे बचें। यही उनकी और पार्टी की सेहत के लिए ठीक होगा, अन्यथा मोदी 400 के पार और कांग्रेस 40 के भी पार नहीं रह पाएगी। अभी भी 'चुनाव काले विपरीत बुद्धि' की जगह 'चुनाव काले अनुकूल बुद्धि' का प्रयोग करें नहीं तो पार्टी की खोती जा रही साख और जमीन खिसकने में संदेह नहीं है। यही वजह है कि उनकी पार्टी की आंतरिक कलह से नेताओं का पलायन जारी है और उनके गठबंधन के दल उनसे दूरी बना रहे हैं। वह दिन दूर नहीं कि घटक दल उनसे टाटा कर लें।

कैलाश मेहरा, गुरुग्राम

हादसों का बड़ा कारण लापरवाही

देश में बढ़ रहे सड़क हादसे चिंता का विषय हैं। सड़क हादसों में अमूमन वाहन में सवार व्यक्ति की दर्दनाक मौत हो जाती है। सड़क हादसों में मरने वाले अपने स्वजन या रिश्तेदार होते हैं। परिवार में कोई पानी पिलाने वाला नहीं होता है। क्या सड़क हादसों से घबराकर वाहन चलाना छोड़ दिया जाए? यह सत्य नहीं है। वाहन को सावधानी पूर्वक चलाने और कम गति से चलाने की सलाह दी जाती है। वाहनों की अधिक गति से चलाने पर वाहन कंट्रोल नहीं हो पाते हैं। तेज रफ्तार के कारण दुर्घटनाग्रस्त वाहन और यात्री की हालत क्या होती होगी। हिट एंड रन पर बनाया गया कानून भी अधर में लटका हुआ है। देश में 53 दुर्घटनाएं हर घंटे में होती हैं। इनमें 19 लोगों की मौत होती है। भारत में हर मिनट में होने वाली दुर्घटना में तीन लोगों की मौत होती है। दुर्घटनाओं में बाइक सवारों के हताहत होने का आंकड़ा चिंतित करने वाला है। 68 फीसद हादसे ग्रामीण क्षेत्रों में होते हैं। यह सब लापरवाही का कारण है। दिल्ली-अजमेर हाईवे पर भीषण हादसे में एक ही परिवार के पांच व्यक्तियों की मौत हो गई। इस तरह के हादसे होते रहते हैं, लेकिन फिर भी लापरवाही बंद नहीं होती है। हिट एंड रन कानून को तुरंत लागू करने और ऐसे ही और सख्त कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।

कांतिलाल मांडोत, नई दिल्ली

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।
अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।

1950 में हुई थी आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की शुरुआत, किंतु इसका तेज विकास 1970 के बाद आरंभ हुआ। नवंबर 2022 में चैटजीपीटी नामक ओपन एआइ चैटबाट के अस्तित्व में आने के बाद कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में एक क्रांति आई है।

आजकल

शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता

पिछले दिनों भारत को पहली एआइ शिक्षिका मिली। केरल के तिरुअनंतपुरम के एक स्कूल में पेश की गई इस रोबोट शिक्षिका का नाम 'आइरिस' है। यह रोबोट शिक्षिका चैटजीपीटी जैसे एआइ प्रोग्रामों से लैस है। इसके पास गणित एवं विज्ञान जैसे विषयों के प्रश्नों का उत्तर देने की क्षमता है। शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रयोग का यह अपने आप में एक अनूठा उदाहरण है

शिशिर शुक्ला
विभागाध्यक्ष, भौतिकी विभाग, स्वामी शुकदेवानंद महाविद्यालय, शाहजहांपुर (उप्र)

तिरुअनंतपुरम के एक स्कूल में छात्रों से संवादरत 'आइरिस' नामक एआइ शिक्षिका। प्रेट्र

हाल में भारत को पहली एआइ (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) शिक्षिका मिली है। निश्चित रूप से तकनीकी के क्षेत्र में यह देश की अभूतपूर्व उपलब्धि है। केरल के तिरुअनंतपुरम के एक स्कूल में पेश की गई इस रोबोट शिक्षिका का नाम 'आइरिस' है। यह रोबोट शिक्षिका चैटजीपीटी जैसे एआइ प्रोग्रामों से लैस है और इसके पास गणित एवं विज्ञान जैसे विषयों के प्रश्नों का उत्तर देने की क्षमता भी है। तीन भाषाओं में बात कर सकने वाली यह एआइ शिक्षिका साड़ी पहनकर स्कूल पहुंची और उसने बच्चों से हाथ भी मिलाया। शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रयोग का यह अपने आप में एक अनूठा उदाहरण है। यूं तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता अथवा आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस की शुरुआत 1950 में हुई थी, किंतु इसका तीव्रतर विकास 1970 के बाद आरंभ हुआ। हाल की बात की जाए तो नवंबर 2022 में चैटजीपीटी नामक ओपन एआइ चैटबाट के अस्तित्व में आने के बाद कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में निस्संदेह एक क्रांतिकारी प्रादुर्भाव हुआ है। चैटजीपीटी में उच्च स्तरीय एल्गोरिदम एवं प्रोग्रामिंग का प्रयोग करके प्रश्नों के उत्तर देने एवं मानव के उन सभी कार्यों को सहज एवं सरल बनाने का प्रयास किया जाता है, जिनको पूर्ण करने के लिए उसे अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करना पड़ता है। इसी चैटजीपीटी को रोबोट के साथ संयुक्त करके कृत्रिम शिक्षिका को अस्तित्व में लाया गया है। यहां पर एक विचारणीय प्रश्न यह उठता है कि शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम मेधा का प्रयोग कहां तक उचित है? कुछ दिनों पहले इंग्लैंड के एक स्कूल ने भी एआइ चैटबाट को प्रिंसिपल हेड टीचर बनाया है एवं विद्यार्थियों को एआइ आधारित पर्सनल असिस्टेंट दिए हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम मेधा का समावेश आखिरकार किस सीमा तक उचित है? क्या किसी विद्यालय अथवा महाविद्यालय को पूर्णतया कृत्रिम मेधा से लैस रोबोट शिक्षकों के हवाले किया जा सकता है? ऐसा कदम उठाकर क्या विद्यार्थियों के भविष्य को लेकर चिंतामुक्त हुआ जा सकता है? इन प्रश्नों पर अगर हम गहन वैचारिक मंथन करें तो हमें इनका उत्तर नकारात्मक ही प्राप्त होगा। कारण यह है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पर आधारित यह रोबोट शिक्षक महज एक उच्च कोटि की एल्गोरिदम एवं सूचनाओं की उच्च भंडारण क्षमता से युक्त मशीन है। यह प्रश्नों का उत्तर तो कदाचित दे सकती है, किंतु जब बात जिज्ञासाओं एवं रचनात्मकता की होगी तब निश्चित रूप से यह औंधे मुंह गिर पड़ेगी। वजह स्पष्ट है कि स्मृति क्षमता एवं तर्कशक्ति में जमीन आसमान का अंतर है। एआइ युक्त रोबोट शिक्षक वास्तविक शिक्षक का स्थान कभी नहीं ले सकते, क्योंकि किसी भी विषय पर सोचने, समझने एवं तर्क प्रस्तुत करने की क्षमता फिलहाल उनके पास नहीं है। किसी भी विषय को बेहतर ढंग से समझने के लिए उस पर अपनी विचारशक्ति एवं तर्क क्षमता का प्रयोग करना नितांत आवश्यक होता है।

आंकड़े यह कहते हैं कि एआइ तकनीक वर्ष 2030 तक 30 करोड़ नौकरियां खत्म कर देगी। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के संबंध में की गई टिप्पणी भी यह कहती है कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक ऐसी तकनीकी क्रांति है, जो हमारी उत्पादकता, वैश्विक आय एवं विकास को बढ़ाएगी, किंतु यही तकनीकी क्रांति कई नौकरियां लील सकती है एवं असमानता की खाई को और अधिक बढ़ा सकती है। आखिर इन सभी रिपोर्ट का क्या मतलब है? क्या भविष्य में शिक्षक अपनी नौकरी से हाथ धो बैठेंगे एवं उन्हें प्रतिस्थापित करने वाली निर्जीव मशीनें होंगी? संभवतः ऐसा अनुमान इसलिए लगाया जा रहा है, क्योंकि मशीनी शिक्षकों को कोई तनख्वाह नहीं चाहिए। उन्हें केवल अपने अंदर लगाई गई बैट्री की चार्जिंग की आवश्यकता है। वहीं दूसरी तरफ बजट का एक अच्छा खासा हिस्सा शिक्षकों के वेतन पर खर्च होता है। दूसरा बिंदु यह है कि मानव शिक्षकों द्वारा समय-समय पर अपनी विभिन्न मांगों को प्रस्तुत किया जाता है। उनके पूर्ण न होने की दशा में विरोध प्रदर्शन भी किया जाता है, जबकि मशीनी शिक्षक कभी किसी तरह की कोई मांग प्रस्तुत नहीं करेंगे, विरोध प्रदर्शन तो बहुत दूर की बात हो गई। कुछ अन्य अंतरों पर गौर करें तो मशीनी शिक्षक विद्यार्थियों को एक ही विषय चाहे जितनी बार पढ़ा सकते हैं, जबकि मानव शिक्षक को एक ही बिंदु अथवा अध्याय की बार-बार पुनरावृत्ति करने के लिए कहने पर उन्हें मानसिक तनाव अथवा झुंझलाहट का अनुभव हो सकता है। इन तर्कों से तो यही प्रतीत होता है कि एआइ आधारित मशीनी शिक्षक वास्तविक बुद्धि पर आधारित मानव शिक्षकों से हर मामले में बेहतर साबित होंगे, किंतु यह केवल और केवल कोरी कल्पना है। सत्य यही है कि मानवता का स्थान मशीन ले सकती। हां, यदि किसी प्रकार से मशीनों में मानवता एवं भावनाओं का भी समावेश किया जा सके तब उस स्थिति में निस्संदेह हम सब खतरे के दायरे में आ जाएंगे, किंतु ऐसा कर पाना फिलहाल संभव नहीं है। अब सवाल यह उठता है कि एआइ को शिक्षा के क्षेत्र में किस हद तक दखल देने की अनुमति दी जाए कि वह अपने सकारात्मक पहलुओं का उपयोग करते हुए शिक्षा को प्रगति के उच्चतम स्तर तक ले जाने में सफल हो सके?

तकनीक के सदैव से ही दो पहलू रहे हैं- सकारात्मक एवं नकारात्मक अथवा वरदान एवं अभिशाप। शिक्षा के क्षेत्र में भी हमें कृत्रिम मेधा के सकारात्मक पहलुओं का ही इस्तेमाल करना चाहिए। शिक्षकों को मशीन से प्रतिस्थापित कर देना तो अनुचित है, क्योंकि यह कदम बेरोजगारी जैसी गंभीर समस्या को बढ़ाने का काम करेगा। इससे देश का विकास पूर्णतया बाधित हो जाएगा। बेहतर रूप में ऐसा किया जा सकता है कि शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की सहायता के लिए एआइ आधारित सहायक उपलब्ध करा दिए जाएं, किंतु यह भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, क्योंकि विद्यार्थियों को एआइ जैसी सुविधा की खुली छूट मिल जाने पर वे जरा सी समस्या के हल के लिए एआइ का ही मुंह ताकेंगे। स्वयं कोशिश करके हल ढूंढ़ने एवं रचनात्मक ढंग से कार्यों को अंजाम देने की प्रतिभा धीरे-धीरे उनसे दूर जाने लगेगी। एक दिन ऐसा होगा, जब वे किसी भी विषय पर अपना स्वतंत्र सोच एवं तर्क प्रस्तुत कर पाने में असमर्थ हो जाएंगे। इसके लिए विद्यार्थियों को स्वयं अच्छे एवं बुरे की पहचान करते हुए सकारात्मक एवं प्रगति की ओर ले जाने वाली दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए। उन्हें एआइ का प्रयोग केवल आवश्यकता की स्थिति में ही करना चाहिए। शिक्षकों द्वारा कृत्रिम बुद्धिमता का सहारा केवल अपने ज्ञानवर्धन एवं विषय की अद्यतन जानकारी के लिए ही लेना चाहिए। अनुप्रयोगों एवं नवाचारों के माध्यम से शिक्षकों को हमेशा यह सिद्ध करते रहना चाहिए कि मशीनें चाहे कितनी ही उन्नत दशा में क्यों न पहुंच जाएं, वे एक जीते जागते शिक्षकों का मुकाबला कदापि नहीं कर सकतीं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता को एक वरदान के रूप में देखते हुए हमें इसका उपयोग विषम परिस्थितियों एवं ऐसी स्थिति में करना चाहिए जहां पर मानव सामान्य रूप से कार्य करने में समर्थ नहीं है। उदाहरण के लिए, हमने तीन वर्ष पहले कोविड जैसी महामारी को झेला है। इस महामारी ने प्रत्येक मनुष्य को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। ऐसे संकटों के समय में शिक्षा को सुचारु रूप से जारी रखने के लिए कृत्रिम मेधा का सहारा लिया जाना चाहिए। निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग शिक्षा के स्वरूप एवं स्तर में आमूलचूल परिवर्तन कर सकता है, बशर्ते कि वह प्रयोग बुद्धिमत्ता से किया जाए।

नए दौर में एआइ

डा. शशांक द्विवेदी

एआइ तकनीक आज जीवन के हर आयाम को प्रभावित कर रही है। अमेरिका के कैलिफोर्निया स्थित अर्थ स्पीशीज प्रोजेक्ट (ईएसपी) के तहत किए जा रहे शोध के अनुसार विज्ञानी अब जानवरों के संचार को समझने के लिए एआइ तकनीक का विकास कर रहे हैं। इसके लिए वे मशीन लर्निंग सिस्टम विकसित कर रहे हैं। वर्षों से मशीन लर्निंग का उपयोग मानव भाषाओं का विश्लेषण करने या प्राचीन संचार को समझने के लिए किया जाता रहा है। इस अध्ययन से पशुओं के संचार को समझने में मदद मिलेगी। इससे दूसरी प्रजातियों के साथ दो तरफा संचार की संभावना भी बढ़ेगी। इस दिशा में साल 2018 में भी जर्मनी के विज्ञानियों ने एक रोबो-बी यानी कृत्रिम मधुमक्खी बनाया था। प्रयोग के तहत उस कृत्रिम मधुमक्खी को असली मधुमक्खियों के बीच छोड़ा गया था। वह असली मधुमक्खियों को भ्रमित करने में सफल रही थी। उसकी उड़ान को असली मधुमक्खियों ने अनुसरण किया और छत्ते में जाने के लिए उन्होंने रोबोट मधुमक्खी की बात भी मानी।

यह भी कहा जा रहा है कि जल्द ही इंसान भी जानवरों से संचार करने में सक्षम हो सकते हैं। इसके लिए विज्ञानी तकनीक के विकास में लगे हुए हैं। जानवरों से संचार करने वाली इस एआइ तकनीक को भविष्य में रोबोट्स में लगाया जा सकेगा, जिससे दो भिन्न प्रजातियों के बीच संचार संभव हो पाएगा। जहां एक ओर यह एक बड़ी कामयाबी साबित हो सकती है वहीं इस तकनीक के संभावित नुकसान भी हो सकते हैं, क्योंकि इंसानी दिमाग में जंगली जानवरों को गलत तरीके से नियंत्रित करने और उनके रहन-सहन के साथ छेड़छाड़ करने की भावना आ सकती है। विज्ञानियों ने एक एआइ आधारित एक सिस्टम भी तैयार किया है, जो छह बुनियादी भावनाओं खुशी, आश्चर्य, गुस्सा, घृणा, उदासी और भय को व्यक्त करने वाले चेहरे को पहचानने में सक्षम पाया गया है। कुल मिलाकर भविष्य में एआइ आधारित ऐसी मशीनें हमारे सामने होंगी, जो इंसानी भावनाओं को पहचानने में सक्षम होंगी। भविष्य में रोबोट और ड्रोन युद्ध के मैदान के अलावा स्वास्थ्य एवं शिक्षा सेवाओं में भी बड़ी भूमिका निभाते दिखाई देंगे।

(डायरेक्टर, मेवाड़ यूनिवर्सिटी)

खरी-खरी

चुनावी रण में समर्थक

डा. प्रशांत अग्निहोत्री

देश में तो हर वक्त चुनाव का मौसम रहता है। कुछ नेता फुल टाइम चुनावी मोड में रहते हैं। चुनाव लड़ना एवं लड़ाना उनका शगल होता है। अब कोई लड़ाई अकेले तो लड़ी नहीं जाती। उसके लिए वफादार समर्थकों की भी जरूरत होती है। वास्तव में किसी भी पार्टी की ताकत उसके समर्थकों की संख्या पर ही निर्भर करती है। समर्थक नेता जी के साथ पहुंचकर हर सभा की संख्या और शोभा दोनों बढ़ाते हैं।

नेता जी का टेंपो हाई करने की सारी जिम्मेदारी इन्हीं समर्थकों पर होती है। ये बातों के बताशे फोड़कर चुनाव जिताते या हारते हैं। इनके पास ऐसे-ऐसे तर्क होते हैं कि सुकरात और प्लेटो जैसे दार्शनिक भी उन पर विश्वास करने लगते हैं। इनके पास ऐसे-ऐसे आंकड़ों का विश्वकोश होता है, जिसको ये अपने समर्थन में सनद की तरह इस्तेमाल करते हैं। वैसे यह कुछ के लिए शौक होता है और कुछ के लिए धंधा। जिनके लिए यह शौक होता है उन्हें प्रायः चुनाव विश्लेषक का शाब्दिक तमगा प्रदान किया जाता है। न्यूज चैनलों की कान पकाऊ बहसों से लेकर नुक्कड़ पर लगे मजमे तक, ये शौकीन लोग विभिन्न राजनीतिक गुणा भाग का गणित समझाते दिख जाते हैं। वहीं जिनके लिए यह धंधा है, वे चुनावी रणनीतिकार कहलाते हैं। नेताओं के चुनाव कार्यालय से लेकर मतदान बूथ तक इनकी उपस्थिति सार्वभौमिक है। कार्यालय प्रभारी, बूथ प्रमुख, पन्ना प्रमुख जैसी संज्ञाओं से इन्हें सुशोभित किया जाता है।

समर्थकों की मुख्य रूप से तीन किस्में पाई जाती हैं। पहले वे होते हैं, जो पार्टी की विचारधारा में विश्वास करते हैं। चाहे पार्टी कितनी भी बुरी क्यों न हो जाए ये उसका साथ नहीं छोड़ते। दूसरे प्रेमिका रूपी होते हैं, जो पार्टी के नेता के आकर्षक व्यक्तित्व को आंखों में भरकर उसके दीवाने हो जाते हैं। बहुतायत में पाए जाने वाले तीसरे प्रकार के समर्थकों का जुड़ाव लिव इन रिलेशन जैसा होता है। ऐसे सत्ताधारी पार्टी में ज्यादा पाए जाते हैं। जब तक पार्टी सत्ता में रहती है, ये उसके साथ रहते हैं। सत्ताधारी पार्टी से सत्ता की डोर छूटते ही इनकी डोर भी टूट जाती है।

X पोस्ट

हनुमान चालीसा भगवान हनुमान की प्रशंसा में है। जहां तक मैं जानता हूं इसमें कहीं नहीं कहा गया है कि हनुमान एकमात्र सच्चे ईश्वर हैं। आखिर उससे कोई आहत कैसे हो सकता है? जफर@Zaffar_Nama

पशुपति पारस ने मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। चुनाव को लेकर भाजपा के पास दो विकल्प थे। पशुपति पारस या फिर चिराग पासवान। पशुपति पारस के पास सांसद थे तो चिराग पासवान के पास जनता। भाजपा के लिए यह फैसला बहुत आसान था। अभिषेक उपाध्याय@upadhyayabhii

परिवारवाद वहां है, जहां पूरी राजनीतिक पार्टी की कमान एक परिवार के हाथ में होती है। राष्ट्रीय अध्यक्ष से लेकर पार्टी के मुख्य महासचिव तक एक ही परिवार से होते हैं। जहां सीएम का नाम योग्यता से नहीं, परिवार के आधार पर तय होता है। डा. ऋचा सिंह@RichaSingh_Alld

बतौर विकेटकीपर-बल्लेबाज रिषभ पंत की वापसी की खबर भारतीय क्रिकेट के लिए एक बहुत बड़ी खुशखबरी है। यह आधुनिक चिकित्सा विज्ञान, दवाओं और सबसे बढ़कर रिषभ पंत की अदम्य जिजीविषा का प्रमाण है। शेखर गुप्ता@ShekharGupta

उत्तराखंड डायरी

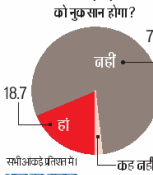

एक खेमे में हताशा तो दूसरे में बेचैनी

विकास धूलिया
स्टेट ब्यूरो चीफ, उत्तराखंड

चुनाव के समय देशभर में जिस तरह दलबदल का सिलसिला चल रहा है, उत्तराखंड भी उससे अछूता नहीं है। पिछले लगभग दो महीने में कांग्रेस के एक विधायक समेत कई पूर्व विधायक भाजपा का दामन थाम चुके हैं। स्वाभाविक रूप से इसका असर यह दिख रहा है कि कांग्रेस खेमे में हताशा का माहौल है। यद्यपि इस राजनीतिक घटनाक्रम का एक दूसरा पहलू भी है। वह यह कि बाहरी नेताओं की आमद से भाजपा के नेता और कार्यकर्ताओं में बेचैनी है। उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि अगर कांग्रेस से इतने पूर्व विधायक और विधायक पार्टी में आ रहे हैं तो उन्हें एडजस्ट कैसे किया जाएगा? अगर अगले विधानसभा चुनाव में टिकट या बड़े ओहदे का वादा किया गया है तो फिर स्वयं उनके भविष्य का क्या होगा?

चुनाव विधानसभा के हों या फिर लोकसभा के, पाला बदलने का खेल खूब चलता है। उत्तराखंड में तो इसका पुराना इतिहास भी रहा है। सबसे चर्चित दलबदल यहां वर्ष 2017 के विधानसभा चुनाव से ठीक पहले 2016 में हुआ था। तब लगभग 10 महीने की अवधि में एक पूर्व मुख्यमंत्री समेत 12 कांग्रेस विधायक भाजपा में शामिल हुए थे। इनमें से नौ विधायकों ने सामूहिक रूप से कांग्रेस छोड़ दी थी। इस बार का परिदृश्य बदला हुआ है। बीते वर्ष हरिद्वार जिले में हुए पंचायत चुनाव से पहले बड़ी संख्या में पंचायत प्रतिनिधियों ने कांग्रेस छोड़ भाजपा की राह पकड़ी। उसके बाद से यह क्रम थमा नहीं, बल्कि अब इसमें एकाएक तेजी आ गई है। पिछले कुछ समय में पूर्व विधायक शैलेंद्र सिंह रावत, विजयपाल सजवाण, धन सिंह नेगी, मालचंद और हाल में बदरीनाथ सीट से कांग्रेस विधायक एवं पूर्व मंत्री राजेंद्र भंडारी ने कांग्रेस छोड़ी है। इनमें से धन सिंह नेगी के अलावा सभी भाजपा में शामिल हुए हैं। पिछला लोकसभा चुनाव गढ़वाल सीट से कांग्रेस टिकट पर लड़े मनीष खंडूड़ी भी भाजपा में चले गए हैं।

बदरीनाथ से कांग्रेस विधायक राजेंद्र भंडारी (बाएं से दूसरे) का भाजपा में शामिल होने पर स्वागत करते मुख्यमंत्री पुष्कर सिंह धामी, केंद्रीय मंत्री पीयूष गोयल और राष्ट्रीय मीडिया प्रमुख अनिल बलूनी। फाइल

पूर्व मंत्री दिनेश धनै भी अब भाजपा का हिस्सा हैं।

एक के बाद एक बड़े नेताओं के कांग्रेस छोड़ने का असर कार्यकर्ताओं के मनोबल पर पड़ा ही, साथ ही लोकसभा चुनाव में टिकट की दावेदारी को लेकर भी नेताओं में हिचकिचाहट दिखाई दे रही है। इसका उदाहरण पूर्व प्रदेश अध्यक्ष गणेश गोदियाल हैं, जिन्होंने संसाधनों की कमी का हवाला देते हुए चुनाव न लड़ने की बात कही। इसके बावजूद कांग्रेस ने उन्हें गढ़वाल सीट से मैदान में उतार दिया। पूर्व प्रदेश अध्यक्ष प्रीतम सिंह टिहरी गढ़वाल एवं विधानसभा में नेता प्रतिपक्ष यशपाल आर्य अल्मोड़ा से चुनाव न लड़ने की इच्छा जता चुके हैं।

उधर भाजपा नेताओं की चिंता अलग तरह की है। पिछले 10 वर्षों से पार्टी में आए नेताओं के राजनीतिक पुनर्वास ने कई भाजपा नेताओं के पैरों तले की राजनीतिक जमीन खिसका दी है। वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव से पहले कांग्रेस से भाजपा में आए सतपाल महाराज को जब भाजपा ने 2017 में विधानसभा का टिकट दिया तो तीरथ सिंह रावत को सीट ही नहीं मिली। यह अलग बात है कि बाद में तीरथ सिंह रावत को भाजपा ने गढ़वाल सीट से लोकसभा पहुंचाया और फिर वह चार महीने के लिए ही सही, मुख्यमंत्री भी बने। वर्ष 2017 के विधानसभा चुनाव से पहले कांग्रेस से आए सभी विधायकों या उनके स्वजन को भाजपा ने टिकट दिया। यही नहीं, जब इस चुनाव में भाजपा तीन-चौथाई से अधिक बहुमत के साथ सत्ता में आई तो 10 सदस्यीय मंत्रिमंडल में छह स्थान पूर्व कांग्रेसियों के हिस्से आए। इनमें सतपाल महाराज, सुबोध उनियाल, हरक सिंह रावत, यशपाल आर्य, रेखा आर्या एवं पूर्व मुख्यमंत्री विजय बहुगुणा के पुत्र सौरभ बहुगुणा के नाम शामिल थे।

भाजपा ने पाला बदल अपना दामन थामने वालों के साथ किए गए वादे को निभाया, लेकिन इस फेर में उन क्षेत्रों के भाजपा नेताओं की अनदेखी हो गई, जो टिकट के स्वाभाविक दावेदार हुआ करते थे। अब भाजपा सांगठनिक रूप से मजबूत और अनुशासन से बंधी पार्टी मानी जाती है, इसलिए सतह पर तो इस स्थिति को लेकर कुछ हलचल नजर नहीं आई, लेकिन अंदर ही अंदर नेताओं में इससे बेचैनी जरूर महसूस की गई। ऐसा ही कुछ इस चुनाव से पहले बड़ी संख्या में कांग्रेस समेत अन्य दलों के नेताओं के भाजपा में आने से हो रहा है। विशेष रूप से उन क्षेत्रों में, जहां से विधायक या पूर्व पूर्व विधायक भाजपा में शामिल हुए हैं। भाजपा में शामिल होने के लिए जिस तरह से कांग्रेस नेता एवं कार्यकर्ता उमड़ रहे हैं, उससे तो लोग यह भी कहने लगे हैं कि कांग्रेसमुक्त भारत का नारा देने वाली भाजपा ही कांग्रेसयुक्त हो गई है।

जागरण जनमत — कल का परिणाम

क्या राहुल गांधी की ओर से हिंदू धर्म में 'शक्ति' को लेकर दिए गए बयान से कांग्रेस को नुकसान होगा?

सभी आंकड़े प्रतिशत में।

आज का सवाल
क्या भाजपा ने पशुपति पारस के बजाय चिराग पासवान को महत्व देकर ठीक किया?

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।

जनपथ

चुनकर आए पुतिन जी पुन: पांचवी बार,
खुशियाली की बात है शुभ-शुभ बोलो यार।
शुभ-शुभ बोलो यार विश्व को दी सौगातें,
विश्वयुद्ध की आप कर रहे हो क्यों बातें!
डर लगता है बंधु आपकी बातें सुनकर,
शब्द मिसाइल आप जरा दागो चुन चुनकर!!
– ओमप्रकाश तिवारी

हरियाणा डायरी

चेहरा बदलने की रणनीति

अनुराग अग्रवाल
राज्य ब्यूरो प्रमुख, हरियाणा

भाजपा के काम करने के तरीके पर निगाह रखने वाले इस बात से बिल्कुल भी हैरान नहीं हैं कि चुनाव से पहले पार्टी अपनी सरकार वाले राज्यों में मुख्यमंत्री क्यों बदलती है। जिन राज्यों में मुख्यमंत्री नहीं बदले जाते, वहां चुनाव के बाद किसी नए और पार्टी की पिछली पंक्ति में रहकर काम करने वाले गैर विवादित चेहरे को मुख्यमंत्री की कुर्सी पर बैठा दिया जाता है। यह भाजपा का काम करने का तरीका है, जिसका उसको फायदा मिलता है। उत्तराखंड और गुजरात इसके उदाहरण हैं, जहां मुख्यमंत्री के चेहरे बदलने के बाद हुए विधानसभा चुनावों में भाजपा को बंपर सफलता हासिल हुई। हरियाणा में भी बिल्कुल ऐसा ही हुआ है। करीब साढ़े नौ साल तक बिना किसी दाग के भाजपा की सरकार चलाने वाले मनोहर लाल को अचानक बदल दिया गया और कुरुक्षेत्र के सांसद नायब सिंह सैनी को मुख्यमंत्री की कुर्सी पर बैठा दिया गया। भाजपा का यह निर्णय मनोहर लाल के विरोधियों के लिए तो सामान्य था, लेकिन नायब सिंह सैनी के लिए बेहद चौंकाने वाला था।

हरियाणा से पहले भाजपा ऐसे प्रयोग कई राज्यों में कर चुकी है। गुजरात में भी इसी तरह अचानक सत्ता परिवर्तन किया गया। आनंदी बेन पटेल के स्थान पर मुख्यमंत्री बने विजय रुपाणी को साल 2022 में हुए विधानसभा चुनाव से करीब 15 माह पहले हटा दिया गया। रुपाणी के स्थान पर भूपेंद्र पटेल को गुजरात का मुख्यमंत्री बनाया गया। इसका नतीजा गुजरात में भाजपा की बंपर जीत के रूप में सामने आया। गुजरात के बाद उत्तराखंड में इसी तरह का घटनाक्रम हुआ। उत्तराखंड में भाजपा ने अपने मुख्यमंत्री को चुनाव से पहले बदल दिया था। जुलाई 2021 में तत्कालीन मुख्यमंत्री तीरथ सिंह रावत ने राज्यपाल को अपना इस्तीफा सौंपा दिया। वे चार महीने ही सीएम के पद पर रहे थे। तीरथ सिंह रावत के इस्तीफा देने के बाद 2022 में चुनाव हुए और भाजपा की सरकार बनी तथा पुष्कर सिंह धामी को मुख्यमंत्री बनाया गया।

मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा छत्तीसगढ़ ऐसे राज्य हैं, जहां चुनाव के बाद भाजपा ने नए चेहरों मुख्यमंत्री बनाया। मध्य प्रदेश में तत्कालीन मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान के स्थान पर मोहन लाल यादव को भाजपा ने मुख्यमंत्री बनाया। राजस्थान में भजन लाल को मुख्यमंत्री बनाया गया। छत्तीसगढ़ में विष्णु सहाय के रूप में भाजपा ने नए चेहरे पर दांव लगाया। अब हरियाणा में सांसद नायब सिंह सैनी को मुख्यमंत्री बनाकर पार्टी ने राजनीतिक गलियारों में यह बहस छेड़ दी है कि आखिर भाजपा चुनाव से पहले अथवा चुनाव के तुरंत बाद मुख्यमंत्री क्यों बदलती है?

इसके पीछे भाजपा की गहरी रणनीति है। चेहरा बदलने का मतलब यह बिल्कुल भी नहीं है कि जिन्हें मुख्यमंत्री पद से अलग किया गया है, उनकी काबिलियत अथवा राजनीतिक क्षमता पर पार्टी को किसी तरह का भरोसा नहीं रह गया है। उनमें कुछ खास बात है, तभी उन्हें मुख्यमंत्री बनाया गया था। अब पार्टी दूसरे स्थान पर उन नेताओं की सेवाएं लेने की रणनीति पर आगे बढ़ रही है। पार्टी नई पीढ़ी के साथ-साथ नए चेहरों को भी सामने लाना चाहती है। भाजपा पिछले कई वर्षों में पार्टी के भीतर यह संदेश देने में पूरी तरह से कामयाब रही है कि एक दरी बिछाने वाला बेहद आम कार्यकर्ता भी पार्टी में शीर्ष पदों पर पहुंच सकता है। अनुभवी चेहरों का लाभ पार्टी केंद्र की राजनीति में उठाती है। नए-नए विकल्प तैयार करती है। नए चेहरों को मौका देने के पीछे राजनीति की दूसरी लाइन तैयार करने का भी सोच काम करता है, जो कि भाजपा की दूरगामी रणनीति का हिस्सा है। इस रणनीति के पीछे भाजपा का एक सोच यह भी काम करता है

मनोहर लाल की विरासत को आगे बढ़ाएंगे मुख्यमंत्री नायब सिंह सैनी (दाएं)। फाइल

कि जब कोई नेता मुख्यमंत्री के पद पर लंबे समय तक बैठा दिखाई देने लगता है तो उसके राजनीतिक विरोधियों को यह अच्छा नहीं लगता। वे अंदर ही अंदर उसका विरोध करते रहते हैं। साथ ही पार्टी को आशंका रहती है कि कहीं चुनाव में जाने पर उसे लोगों की सत्ता विरोधी मानसिकता का सामना न करना पड़ जाए। ऐसे में सीएम का चेहरा बदलकर पार्टी न केवल अपने संगठन के भीतर कुछ नेताओं में पनपने वाली कथित कुंठा को खत्म करने में कामयाब होती है, बल्कि लोगों में आने वाली सत्ता विरोधी मानसिकता को भी जड़ से खत्म करने में सफलता प्राप्त कर लेती है।

हरियाणा इसका बड़ा उदाहरण है। अपने एक इंटरव्यू में पूर्व मुख्यमंत्री मनोहर लाल ने कहा है कि वह पिछले एक साल से पार्टी में अपना विकल्प तैयार कर रहे थे और नायब सिंह सैनी के रूप में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने उस पर अपनी मुहर लगा दी है। यानी मनोहर लाल को पहले से पता था कि उन्हें सीएम की कुर्सी छोड़नी है। मनोहर लाल भाजपा की केंद्रीय राजनीति में अब किस भूमिका में होंगे, यह तो आने वाला समय बताएगा, लेकिन नायब सिंह सैनी के मुख्यमंत्री बनने से भाजपा लोकसभा और उसके करीब छह माह बाद राज्य में होने वाले विधानसभा चुनावों में विरोधी राजनीतिक दलों का गणित जरूर बिगाड़ सकती है।

****

जो बात सिद्धांत में गलत है, वह बात व्यवहार में भी सही नहीं है।
- डॉ. राजेंद्र प्रसाद

अगवा किए गए व्यापारिक जहाज को बीच समुद्र में लुटेरों से मुक्त कराने के अभियान को भारतीय नौसेना ने जिस कौशल के साथ अंजाम दिया, उससे उसकी विश्वसनीयता और क्षमता पर ही मुहर लगती है। वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का उपयोग करने वाले देश भी भारत की उपस्थिति के महत्व को नकार नहीं सकते।

विश्वसनीयता पर मुहर

भारतीय समुद्री तट से करीब 2,600 किलोमीटर दूर लगभग 40 घंटे चले ऑपरेशन के दौरान अपहृत व्यापारिक जहाज एमवी रुएन के चालक दल के 17 सदस्यों को बचाना और 35 सोमालियाई लुटेरों को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर करना, भारतीय नौसेना के लिए एक शानदार उपलब्धि तो है ही, जिस सतर्कता और कौशल के साथ इस अभियान को अंजाम दिया गया, उससे उसकी विश्वसनीयता और क्षमता पर मुहर भी लगती है। उल्लेखनीय है कि एमवी रुएन को पिछले साल 14 दिसंबर को समुद्री लुटेरों ने अगवा किया था और यह तभी से उनके कब्जे में था। नौसेना के युद्धपोत आईएनएस कोलकाता ने एमवी रुएन को रोका था। ड्रोन की मदद से रुएन पर समुद्री लुटेरों के कब्जे की पुष्टि की गई। जब लुटेरों ने ड्रोन को नष्ट कर दिया, तब भारतीय वायुसेना ने सी-17 एयरक्राफ्ट से खास समुद्री कमांडो (मार्कोस) टीम को जहाज पर उतारा, जिसने फिर पूरे अभियान को अंजाम तक पहुंचाया। गौरतलब है कि अभी दो महीने पहले भी भारतीय नौसेना ने महज छत्तीस घंटों के भीतर चलाए गए दो अभियानों से समुद्री लुटेरों के मंसूबों पर पानी फेरा था। ऐसे समय में, जब लाल सागर में समुद्री लुटेरों का आतंक बढ़ा हुआ है और हूती विद्रोही अमेरिकी नौसेना की भरपूर परीक्षा ले रहे हैं, भारतीय नौसेना पिछले कुछ समय से अपने समुद्री क्षेत्र में जो पराक्रम दिखा रही है, उसने पूरी दुनिया को अपनी रणनीतिक अहमियत का एहसास कराया है। समुद्री सुरक्षा के क्षेत्र में भारत जो भूमिका निभा रहा है, उसकी आज अगर अमेरिका भी तारीफ कर रहा है, तो इसका मतलब समझा जा सकता है। पश्चिम में अरब प्रायद्वीप और पूर्व में भारतीय उपमहाद्वीप के बीच स्थित अरब सागर का इलाका अंतरराष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण है, जहां तेल और प्राकृतिक गैस का बड़ा भंडार भी है। पिछले कुछ दशकों में चीन ने अपनी नौसेना का जिस तरह से आधुनिकीकरण किया है और अपनी

'स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स' नीति के तहत नजदीकी देशों में रणनीतिक बंदरगाहों का निर्माण किया है, भारत की सक्रियता को चीनी रणनीति के जवाब के रूप में देखा जा सकता है। पिछले दस वर्षों में नौसेना व भारतीय तटरक्षक बलों को जिस तरह मजबूत किया गया है, उसके नतीजे तो भारतीय नौसेना की बढ़ती सामर्थ्य के रूप में दिख ही रहे हैं, अरब सागर से गुजरती वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का उपयोग करने वाले देशों को भी इससे यह संदेश जाता है कि वे भारत की उपस्थिति के महत्व को नकार नहीं सकते।

अदृश्य दुश्मन पर नजर

इंटरनेट की ताकत ने भूगोल को इतिहास बना दिया है। यही वजह है कि आज साइबर अपराध दुनिया भर के देशों के लिए चुनौती बन चुके हैं। भारत में चक्षु और डीआईपी जैसी पहलें सराहनीय हैं, लेकिन साइबर अपराधी जिस तरह नित-नए तरीके लेकर आ रहे हैं, लोगों को भी जागरूक होना होगा।

भारत बड़े स्तर पर साइबर अपराध और साइबर धोखाधड़ी के हमलों का सामना कर रहा है। पिछले कुछ वर्षों में तो साइबर अपराध के मामले बड़े पैमाने पर बढ़े हैं। दरअसल, कोविड-19 का दौर साइबर अपराध के लिए स्वर्ण युग के रूप में आया। लेकिन वर्तमान स्थितियों को देखकर यही लगता है कि यह आगामी कई दशकों तक हमारे साथ रहने वाला है। आज हम नित-नए प्रकार के साइबर अपराध के मामले देख रहे हैं।

दुनिया भर के देशों के लिए साइबर अपराध बड़ी चुनौती बन चुके हैं। सच तो यह है कि इंटरनेट ने भूगोल को इतिहास बना दिया है। इंटरनेट ने साइबर अपराधियों को उनके अपराध का पूरा ताना-बाना बुनने में मदद की है। ऐसे में, साइबर अपराधियों की अंतरराष्ट्रीय प्रकृति राष्ट्रीय सरकारों के लिए मुसीबत बन गई है। जबकि, सरकारें साइबर अपराध को विनियमित करने के लिए राष्ट्रीय कानून अपना रही हैं।

पवन दुग्गल
सुप्रीम कोर्ट के वकील एवं साइबर कानून विशेषज्ञ

दरअसल, साइबर अपराधी जल्द पैसा कमाने के सारे हथकंडे जानते हैं। अपराधियों को पता होता है कि इंटरनेट उपयोगकर्ताओं को विश्वास में लेकर कैसे आसानी से उन्हें अपना शिकार बनाया जा सकता है और पैसा कमाया जा सकता है। ऑनलाइन धोखाधड़ी आज सबसे बड़े अपराधों में एक हो गई है। आए-दिन हमारे आसपास का कोई न कोई व्यक्ति ऑनलाइन धोखाधड़ी का शिकार बनता दिखता है। अनुमान है कि इंटरनेट का उपयोग करने वाला हर तीसरा व्यक्ति ऑनलाइन धोखाधड़ी से पीड़ित है। अन्य क्षेत्रों की तुलना में आज ज्यादा से ज्यादा लोग बिना किसी प्रशिक्षण के इंटरनेट से जुड़ रहे हैं। और, जब व्यक्ति इंटरनेट से जुड़ता है, तो तमाम सूचनाओं और चुनौतियों के गहरे सागर में गोते लगाता है।

भारत में साइबर धोखाधड़ी और अपराध एक तरह से कुटीर उद्योग का रूप ले चुका है और यह तेजी से बढ़ रहा है। वर्तमान में पहचान की चोरी, फिशिंग और ऑनलाइन वित्तीय धोखाधड़ी भारत में सबसे प्रचलित तीन साइबर अपराध हैं। लेकिन समस्या यह है कि अपने देश में साइबर अपराध के मामलों में सजा का अनुपात एक फीसदी से भी कम है। वर्तमान साइबर कानून बढ़ते हुए साइबर अपराधों से निपटने के लिए पर्याप्त नहीं है।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 में साइबर धोखाधड़ियों से निपटने के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रावधान नहीं है। व्यावहारिक रूप से सभी ऑनलाइन वित्तीय धोखाधड़ी में भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 420 के तहत पुलिस कार्रवाई करती है, लेकिन इसके बावजूद हम साइबर धोखाधड़ी को बढ़ावा देने के लिए बुनियादी संरचना और दूरसंचार नेटवर्क का दुरुपयोग होता देखते हैं।

भारत सरकार साइबर अपराध और धोखाधड़ी को लेकर अत्यधिक चिंतित है। यही कारण है कि सरकार ने कुछ समय पहले 'संचार साथी' पोर्टल लॉन्च किया था। नागरिकों के हित में यह पोर्टल मोबाइल ग्राहकों को सशक्त बनाने, उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने और उन्हें जागरूक बनाने के लिए दूरसंचार विभाग की बड़ी पहल है। संचार साथी के आने के बाद अब लोगों को पता चल जाता है कि उनके नाम पर कितने सिम कार्ड पंजीकृत हैं।

इसके अलावा, हाल ही में भारत सरकार ने चक्षु पोर्टल लॉन्च किया है। लोग इस पोर्टल पर साइबर अपराध, वित्तीय धोखाधड़ी, कॉल, एसएमएस, व्हाट्सएप आदि माध्यमों से होने वाली किसी भी धोखाधड़ी की शिकायत दर्ज करा सकते हैं। चक्षु ऑनलाइन धोखाधड़ी से लड़ने के लिए लोगों को शक्तिशाली बनाता है। इससे पहले व्यवस्था थी कि जब कोई साइबर अपराध का शिकार होता था, तो वह उसकी शिकायत कर सकता था। हालांकि नई सरकारी पहलों ने मौजूदा ढांचे के दायरे को बढ़ाया है। चक्षु का उद्देश्य धोखाधड़ी वाले संदेशों और संचारों को उजागर करना और उनका मिलान करना है। यह अंतिम पंक्ति के उपयोगकर्ताओं को सशक्त बनाता है। चक्षु साइबर अपराध से निपटने के लिए मील का पत्थर साबित होगा। यह सरकार को उन सभी संदिग्ध संदेशों और संचारों का भंडार बनाने की अनुमति देगा, जो साइबर अपराधियों द्वारा निर्दोष उपयोगकर्ताओं को लक्षित करने के लिए तेजी से उपयोग किए जा रहे हैं।

सबसे बड़ी बात यह है कि चक्षु पोर्टल न केवल उपयोगकर्ताओं को सशक्त बनाएगा, बल्कि वे कानून प्रवर्तन एजेंसियों के साथ अपने अनुभव भी साझा कर सकेंगे। साथ ही लोग साइबर अपराध के नए तरीकों से बचने के लिए संवेदनशील बनेंगे। सरकार लोगों को जागरूक करने के लिए चक्षु पर संदिग्ध संदेशों को प्रकाशित कर सकती है। इस तरह की जागरूकता से साइबर अपराध के विरुद्ध लड़ने की क्षमता का निर्माण होगा।

इसके अलावा, इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री अश्विनी वैष्णव ने डिजिटल इंटेलिजेंस प्लेटफॉर्म (डीआईपी) भी लॉन्च किया है, जो दूरसंचार संसाधनों के दुरुपयोग को रोकने के लिए हितधारकों के बीच समन्वय की अनुमति देता है। इसका उद्देश्य साइबर धोखाधड़ी पर विभिन्न सरकारी एजेंसियों के बीच जानकारी साझा करना है, ताकि सरकारी तंत्र साइबर धोखाधड़ी के खिलाफ लड़ने के लिए एकीकृत ढंग से काम कर सके। चक्षु और डीआईपी की शुरुआत साइबर धोखाधड़ी और अपराधों के बढ़ते खतरे से प्रभावी ढंग से लड़ने के लिए सरकार का महत्वपूर्ण कदम है। चक्षु को तैयार करने के लिए सरकार की तारीफ करनी चाहिए।

इसके अलावा निरंतर जागरूकता की भी जरूरत होगी, ताकि भारतीय डिजिटल उपयोगकर्ताओं को आगे भी सशक्त बनाया जा सके। हमें सतर्क रहना होगा, क्योंकि साइबर अपराधी धोखाधड़ी करने के नए-नए तरीके आजमाएंगे। साथ ही सरकार को भी साइबर अपराध की नई-नई चुनौतियों से निपटने के लिए तैयार रहना होगा। कानूनी ढांचे को अपडेट करने के साथ ही साइबर अपराधों से निपटने के लिए कानून प्रवर्तन एजेंसियों की क्षमता को भी बढ़ाना होगा। साथ ही प्रत्येक हितधारक को साइबर अपराध से लड़ने के लिए अपना-अपना योगदान देना होगा।

edit@amarujala.com

जीवन धारा

एस. राधाकृष्णन

हम एक ही दुनिया में रहते हैं और हमें मानवीय उद्देश्य और नियति की एक सामान्य अवधारणा के लिए शिक्षित होने की आवश्यकता है। विभिन्न राष्ट्रों को मानव जाति के सदस्यों के रूप में एक साथ रहना चाहिए।

दुनिया को बचाना है, तो शांति आवश्यक है

मानव सभ्यता पर मंडरा रहा खतरा एक अत्यंत नैतिक आवश्यकता का लक्षण है। आध्यात्मिक क्रांति के बिना, मानवीय प्रेरणा में परिवर्तन के बिना दुनिया का कोई स्थिर भविष्य नहीं हो सकता। एक अच्छी दुनिया का निर्माण अहंकार या स्वार्थ, घृणा या अन्याय, लालच या सत्ता की लालसा पर नहीं किया जा सकता। यूनान के इतिहासकार और राजनीतिक दार्शनिक थ्यूसीदाइदीज ने बहुत पहले कहा था कि यह सत्ता की लालसा 'राष्ट्रों को अपने प्रेम में फंसाती है और एक के बाद एक उन्हें धोखा देकर बर्बाद कर देती है।' यदि दुनिया को बचाना है, तो आध्यात्मिक नवीनीकरण आवश्यक है। एक नए उद्देश्य को हमारी शिक्षा, हमारे विज्ञान और हमारी संस्कृति का समन्वय करना चाहिए, उन्हें विश्व दृष्टिकोण का अभिन्न अंग बनाना चाहिए, जो हमारी सभी गतिविधियों को प्रेरित करे।

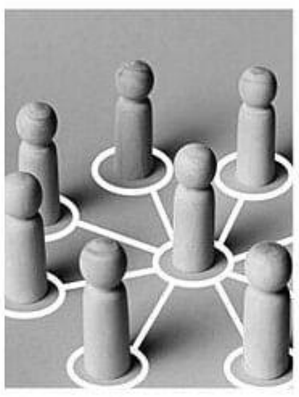

चाहे हम इसे पसंद करें या नहीं, हम एक ही दुनिया में रहते हैं और हमें मानवीय उद्देश्य और नियति की एक सामान्य अवधारणा के लिए शिक्षित होने की आवश्यकता है। विभिन्न राष्ट्रों को मानव जाति के सदस्यों के रूप में एक साथ रहना चाहिए; सभ्यता के प्रयास में शत्रुतापूर्ण संस्थाओं के रूप में नहीं, बल्कि मित्रवत भागीदार के रूप में। ताकतवर कमजोरों की मदद करेंगे और सभी स्वतंत्र राष्ट्रों का एक विश्व संघ होगा। पूर्व और पश्चिम का अलगाव खत्म हो गया है और एक नई दुनिया का इतिहास शुरू हो गया है। हम जानते हैं कि हम विभिन्न धर्मों के लोग हैं, लेकिन उन विभिन्न धर्मों में भी एक अंतर्निहित एकता है। हम विविधता को खत्म करना या एकरूपता थोपना नहीं चाहते। मतभेद का मतलब मनमुटाव नहीं होना चाहिए। प्रत्येक धर्म अपनी निजता को बनाए रखते हुए दूसरे धर्म की वैधता की सराहना करना सीखे। हम किसी पसंदीदा जाति या चुने हुए लोगों या विशिष्ट सत्य में विश्वास नहीं करते हैं। हमारे संतों ने सभी धर्मों का आतिथ्य सत्कार किया है। हम राष्ट्रवादी और सैन्यवादी समाजों के पीड़ित हैं। पहले दूसरे राष्ट्रों को सर्वोच्च माना जाता था, और उन राष्ट्रों के लक्ष्यों और राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को पाने के लिए हम बल प्रयोग का सहारा लेते थे। लेकिन हम ऐसी स्थिति में आ गए हैं, जब राष्ट्र-राज्य को विश्व समुदाय की व्यापक अवधारणा के अधीन होना होगा। जब तक हम ऐसा करने में सक्षम नहीं होंगे, जब तक हम बल का प्रयोग नहीं छोड़ेंगे, जो दुनिया में असहनीय और घृणित है, जहां परमाणु हथियार विकसित हो गए हैं, हमारे लिए दुनिया में शांति लाना संभव नहीं होगा। हथियारों का ढेर और परमाणु परीक्षण... हमें ज्यादा उम्मीद नहीं देते। हमें लगता है कि अगर ये हथियार जमा होते रहे और ये भंडार बढ़ता गया, तो दुनिया टुकड़ों में बंट सकती है। भले ही ऐसा न हो, लेकिन जब परमाणु परीक्षण होते हैं, तो वे न केवल वर्तमान पीढ़ियों को, बल्कि अजन्मी पीढ़ियों को भी नुकसान पहुंचाने के लिए बाध्य होते हैं।

बेहतर दुनिया के वास्ते...

सूत्र

एक बेहतर और समन्वयवादी दुनिया के निर्माण के लिए हमें अपने अहंकार, स्वार्थ, घृणा एवं सत्ता की लालसा पर अंकुश लगाना होगा। भले ही विभिन्न जातियों, धर्मों, समुदायों के रूप में हमारी पहचान अलग-अलग हो, हमारी संस्कृतियां एवं जीवन-शैली में भिन्नता हो, लेकिन हम सभी एक ही पृथ्वी के वासी और एक ही मानव जाति के सदस्य हैं।

दूसरा पहलू

मोनोलिथ को लेकर दिलचस्प बात यह है कि यह जितनी जल्दी दिखाई देता है, उतने ही रहस्यमयी तरीके से गायब भी हो जाता है।

सुलझ नहीं रही मोनोलिथ की गुत्थी

इन दिनों ब्रिटेन की वेल्स की पहाड़ियों पर मिले रहस्यमय मोनोलिथ की हर तरफ चर्चा है। दरअसल वेल्स में रहने वाले क्रेग मुइर जब एक सुबह सैर के लिए निकले, तो उन्हें एक चमकदार स्टील की लंबी संरचना मिली, जिसे अंग्रेजी में मोनोलिथ कहा जाता है। मुइर ने कहा, मेरी कुछ ही दूरी पर एक चमकदार खंभा खड़ा था, जिसका कोई स्पष्ट निशान तो नहीं था, लेकिन हां उसे देखने में ऐसा लग रहा था, मानो इसे अंतरिक्ष से लाया गया हो। यह मोनोलिथ वेल्स में कैसे आया, इसकी कोई पुख्ता जानकारी नहीं है। लेकिन जो लोग मोनोलिथ से अज्ञात हैं, वे इसे एलियन से जोड़ रहे हैं, तो कई लोगों को यह मोनोलिथ वर्ष 2020 में दुनिया भर में मिली रहस्यमय वस्तु की याद दिला रहा है। लेकिन मोनोलिथ को लेकर दिलचस्प बात यह है कि यह जितनी जल्दी दिखाई देता है, उतने ही रहस्यमयी तरीके से गायब भी हो जाता है, जिसके बारे में जानने के लिए लोगों में उत्सुकता बनी हुई है। 37 वर्षीय मुइर ने कहा कि वह लगभग दस फीट लंबा था और लगभग डेढ़ फुट चौड़ा था। मोनोलिथ को देखने से ऐसा लग रहा था कि यह बहुत हल्का है, फिर भी वह हवा में बिल्कुल भी नहीं हिल रहा था।

एमी ऑर्टिज

कुछ लोगों का मानना है कि यह लोगों की शरारत है, तो कई लोगों का कहना है कि इसे एलियन द्वारा लाया जाता है। वर्ष 2020 से जारी गुत्थी अब तक सुलझ नहीं पाई है।

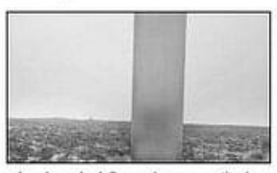

जो लोग मोनोलिथ से अज्ञात हैं, वे इसे एलियन से जोड़ रहे हैं, तो कई लोगों को मोनोलिथ वर्ष 2020 में दुनिया भर में मिली रहस्यमय वस्तु की याद दिला रहा है।

मोनोलिथ आज भी एक रहस्य बना हुआ है। यह रहस्यमयी वस्तु स्टेनली कुब्रिक की फिल्म *2001: ए स्पेस ओडिसी* में दिखाए गए मोनोलिथ की भी याद दिलाती है, जिसमें एलियन लोगों का मार्गदर्शन करने के लिए इन वस्तुओं का उपयोग करते थे। अमेरिकी ब्यूरो ऑफ लैंड मैनेजमेंट के अनुसार, वर्ष 2020 में, यूटा के रेड रॉक रेगिस्तान में एक मोनोलिथ पाया गया था, जिसने लोगों को काफी आकर्षित किया, लेकिन जल्द ही उसे किसी ने वहां से हटा दिया। रोमानिया में एक मोनोलिथ 27 नवंबर को दिखाई दिया और 2 दिसंबर को गायब हो गया, वहीं कैलिफोर्निया में 2 दिसंबर को मोनोलिथ दिखाई दिया और 3 दिसंबर को गायब हो गया और 4 दिसंबर को फिर से दिखाई दिया।

मोनोलिथ की गुत्थी को लोग अपने-अपने अंदाज में सुलझा रहे हैं। कुछ लोगों का मानना है कि यह कुछ लोगों की शरारत है, तो कई लोगों का कहना है कि इसे दूसरे ग्रह के वासियों द्वारा लाया जाता है। वर्ष 2020 से जारी गुत्थी अब तक सुलझ नहीं पाई है और 2024 में भी रहस्य बनी हुई है कि आखिर मोनोलिथ को कौन लाता है और जल्द ही यह क्यों गायब हो जाता है।

©The New York Times 2024

आंकड़े

राज्यों पर कर्ज का बोझ

पिछले 11 वर्षों में राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों पर कर्ज के बोझ में 232 फीसदी का इजाफा हुआ है।

आंकड़े लाख करोड़ रुपये में। 2023 के संशोधित अनुमान एवं 2024 के बजट अनुमान के हैं।

स्रोत: RBI

व्यर्थ की मोह-ममता से कोई लाभ नहीं होगा। सदाचार का पालन करते हुए भगवान की भक्ति और असहायों की सेवा करते रहने में ही कल्याण है।

मुक्ति का उपाय

अंतर्यात्रा

शिव कुमार गोयल

एक सज्जन स्वामी रामकृष्ण परमहंस के पास सत्संग के लिए पहुंचे। बातचीत के दौरान उन्होंने प्रश्न किया, महाराज, मुक्ति कब होगी? परमहंस जी ने कहा, जब 'मैं' चला जाएगा, तब स्वतः मुक्ति की अनुभूति करने लगोगे।

स्वामी जी ने बताया, ''मैं' दो तरह का होता है। एक पक्का 'मैं' और दूसरा कच्चा। जो कुछ मैं देखता, सुनता या महसूस करता हूं, उसमें कुछ भी मेरा नहीं, यहां तक कि शरीर भी नहीं। मैं ज्ञानस्वरूप हूं, यह पक्का 'मैं' है। यह मेरा मकान है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पत्नी है, यह सब सोचना कच्चा 'मैं' है।'

वह आगे कहते हैं, 'जिस दिन यह दृढ़ विश्वास हो जाएगा कि ईश्वर ही सब कुछ कर रहे हैं, तो समझो, यह जीवन मुक्त हो गया। जिस प्रकार धनिकों के घर की सेविका मालिकों के बच्चों को अपने ही बच्चे की तरह पालती-पोसती है, पर जानती है कि उन पर उसका कोई अधिकार नहीं है, उसी प्रकार हम सबको बिना किसी मोह, ममता और लगाव के जीवन बिताना चाहिए। व्यर्थ की मोह-ममता से कोई लाभ नहीं होगा। सदाचार का पालन करते हुए भगवान की भक्ति और असहायों की सेवा करते रहने में ही कल्याण है।' इन बातों को सुनकर उस व्यक्ति की जिज्ञासाओं का समाधान हो गया।

(अमर उजाला आर्काइव से)

अमर उजाला

पुराने पन्नों से — 26 जनवरी, 1987

राजीव गांधी के बयान से जयवर्द्धने को दुख

श्रीलंका के राष्ट्रपति जेआर जयवर्द्धने ने कहा कि उन्हें भारतीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी के उस बयान से क्षोभ हुआ है, जिसमें उन्होंने कहा है कि श्रीलंका की सरकार वहां की जातीय समस्या को हल करने की इच्छुक नहीं है।

इसके जिम्मेदार पशु नहीं

मानव-वन्यजीव संघर्ष को केरल सरकार ने विशिष्ट आपदा घोषित कर दिया है। ऐसे संघर्ष से मनुष्य एवं वन्यजीव, दोनों को नुकसान होता है।

जयसिंह रावत

संकट

आज मानव-वन्यजीव संघर्ष केवल भारत ही नहीं, बल्कि वैश्विक समस्या के रूप में उभर रहा है। इस संघर्ष में मनुष्य तो मारे ही जा रहे हैं, वन्य जीवन का नुकसान भी कम नहीं हो रहा है। भारत में मानव-वन्यजीव संघर्ष कई रूपों में देखा जाता है, जिसमें शहरी क्षेत्रों में बंदरों का आतंक, ग्रामीण क्षेत्रों में जंगली सूअरों द्वारा फसल को नुकसान और बाघों, तेंदुओं और भालुओं जैसे हिसंक जीवों द्वारा मनुष्यों पर हमला शामिल है। मामला इतना गंभीर हो गया कि केरल सरकार को मानव-वन्यजीव संघर्ष को विशिष्ट आपदा घोषित कर बचाव के लिए मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक कमेटी बनानी पड़ी। अब केरल राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण मानव-पशु संघर्ष में सहायता करने लगा है, जबकि यह वन विभाग की जिम्मेदारी है।

केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्री भूपेंद्र यादव द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार, देश में बाघों की संख्या 3,683 तक पहुंच गई। देश में तेंदुओं की आबादी 2018 से लेकर 2022 तक के चार वर्षों की अवधि

में 1,022 (लगभग आठ प्रतिशत) बढ़कर 12,852 से 2022 में 13,874 हो गई है। वास्तविक संख्या थोड़ी अधिक हो सकती है, क्योंकि ये अनुमान तेंदुओं के 70 प्रतिशत निवास की ही सैंपलिंग के आधार पर है।

मानव आबादी को सर्वाधिक खतरा तेंदुओं से ही उत्पन्न होता है। उत्तराखंड की राजधानी के कुछ इलाकों में लोगों को रात में घरों से न निकलने की सलाह प्रशासन द्वारा दी गई है। मुख्यमंत्री को राज्य में गुलदारों के बढ़ते हमलों को देखते हुए वन विभाग के कर्मचारियों की छुट्टियों पर रोक लगानी पड़ी। उत्तराखंड में हर साल मानव-पशु संघर्ष बढ़ रहा है। राज्य गठन के वर्ष 2000 से लेकर 2022 तक, कुल 1,054 लोग वन्यजीवों के हमलों का शिकार हुए और 5,112 व्यक्ति ऐसे हमलों में घायल हुए।

उत्तराखंड में गुलदारों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है और मानव जीवन को सर्वाधिक खतरा इन्हीं गुलदारों से है। इस संकट के लिए बेजुबान वन्यजीवों को अकेले दोषी ठहराना न तो न्यायसंगत है और न ही इससे कोई हल निकल सकता है। देखा जाए, तो मनुष्य ही इस संघर्ष के लिए ज्यादा जिम्मेदार है। मानव आबादी बढ़ते जाने से उसका विस्तार वन्यजीव आवासों की ओर हो रहा है। यह स्थिति वन्यजीवों को मानव बहुल क्षेत्रों में भोजन और आश्रय खोजने के लिए मजबूर करती है, जिससे संघर्ष की संभावना बढ़ जाती है।

इसके अलावा, जलवायु परिवर्तन पारिस्थितिक तंत्र को बदल रहा है और वन्यजीवों के व्यवहार, वितरण और भोजन की उपलब्धता को भी प्रभावित कर रहा है। इससे जानवरों की गतिविधियों और सीमाओं में परिवर्तन हो रहा है। अवैध शिकार और वन्यजीव व्यापार जैसी अवैध गतिविधियां वन्यजीव आबादी को कम कर सकती हैं, जिससे संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ सकती है और मनुष्यों के साथ संघर्ष हो सकता है। जो समुदाय अपनी आजीविका के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं, उन्हें वन्यजीवों के साथ संघर्ष का सामना करना पड़ता है। कुछ मामलों में, वन्यजीव व्यवहार के बारे में जागरूकता की कमी और अपर्याप्त शमन उपाय संघर्षों में योगदान कर सकते हैं। संघर्षों को कम करने के लिए शिक्षा और सामुदायिक सहभागिता आवश्यक है।

मानव-वन्यजीव संघर्ष को संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डाइवर्सिटी के 2020 के बाद के वैश्विक जैव विविधता ढांचे में एक वैश्विक चिंता के रूप में मान्यता दी गई है। विशेषज्ञों द्वारा ऐसे कई दृष्टिकोण और उपाय सुझाए गए हैं, जो क्षति या प्रभाव को कम करने, तनाव घटाने, आय और गरीबी के जोखिमों को दूर करने और स्थायी समाधान विकसित करने के लिए अपनाए जा सकते हैं। इन सुझावों में वन्यजीवों को बस्तियों में आने से रोकने के लिए बाधाएं (बाड़, जाल, खाइयां), रखवाली और पूर्व-चेतावनी प्रणालियां, निवारक और विकर्षक (सायरन, रोशनी, मधुमक्खी के छत्ते), स्थानांतरण (वन्यजीवों को स्थानांतरित करना), मुआवजा या बीमा, जोखिम कम करने वाले विकल्प प्रदान करना, साथ ही प्रबंधन भी शामिल हैं। स्वस्थ पारिस्थितिकी तंत्र और लोगों को प्रदान की जाने वाली महत्वपूर्ण सेवाएं वन्य जीवन पर निर्भर करती हैं। इसलिए मानव-वन्यजीव संघर्षों का प्रबंधन संयुक्त राष्ट्र के जैव विविधता विजन-2050 को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है, जिसमें 'मानवता प्रकृति के साथ सद्भाव में रहती है और जिसमें वन्यजीव और अन्य जीवित प्रजातियां संरक्षित हैं।'

कल्पमेधा

दुर्जन एक गुट बना लें, तो सज्जनों को भी संगठित हो जाना चाहिए, वरना एक-एक करके उन सब की बलि चढ़ जाएगी।

- एडमंड बर्कले

निष्पक्षता का तकाजा

आम चुनाव की तारीखों का एलान करने के साथ ही निर्वाचन आयोग ने गुजरात, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड के गृह सचिवों को हटाने का निर्देश जारी कर दिया। इसके अलावा मिजोरम और हिमाचल प्रदेश के सामान्य विभाग के सचिवों को भी हटाने का आदेश दे दिया। अब इस फैसले को राजनीतिक रंग देने की कोशिश की जा रही है। खासकर पश्चिम बंगाल सरकार इसे लेकर पक्षपात का आरोप लगा रही है। हालांकि चुनाव की तारीखें घोषित होने से पहले ही निर्वाचन आयोग ने सभी राज्य सरकारों को निर्देश दिया था कि वे चुनाव संबंधी कार्यों से जुड़े उन अधिकारियों का तबादला करें, जिन्होंने अपने पद पर तीन वर्ष का समय पूरा कर लिया है या जो अपने गृह जिलों में तैनात हैं। मगर राज्य सरकारों ने उस निर्देश पर अमल नहीं किया था। उत्तर प्रदेश सरकार भी नहीं चाहती थी कि उसके गृह सचिव को हटाया जाए, मगर निर्वाचन आयोग ने उसकी दलील नहीं मानी। छिपी बात नहीं है कि चुनाव में शीर्ष अधिकारियों की बड़ी भूमिका होती है। गृह सचिव राज्यों में और जिलाधिकारी जिलों में निर्वाचन आयोग के प्रतिनिधि होते हैं। इसलिए अगर वे निष्पक्ष नहीं होंगे, तो उन जगहों पर चुनाव प्रक्रिया की निष्पक्षता पर सवाल उठेंगे ही। इसलिए निर्वाचन आयोग ने छह राज्यों के गृह सचिवों और पश्चिम बंगाल के पुलिस आयुक्त को हटा दिया।

हालांकि यह न तो पहली बार हुआ है और न कानून की नजर में कोई गलत कदम है। जहां भी निर्वाचन आयोग को लगता है कि कोई अधिकारी चुनाव में निष्पक्ष भूमिका नहीं निभा सकता या निभा रहा, तो वह उसे हटा कर उसकी जगह दूसरे अधिकारी को नियुक्त कर सकता है। राजनीतिक दलों की शिकायतों के मद्देनजर चुनाव प्रक्रिया के दौरान भी कई बार अधिकारियों को बदल दिया जाता है। अभी जिन राज्यों के गृह सचिवों और पश्चिम बंगाल के पुलिस आयुक्त को हटाया गया, उनके बारे में पहले से राजनीतिक दल शक जाहिर कर रहे थे। उनकी संबंधित राज्य सरकारों के प्रति अधिक निष्ठा देखी जा रही थी। पश्चिम बंगाल के पुलिस आयुक्त तो काफी समय से विवादों में घिरे थे। उनके खिलाफ सीबीआइ ने शिकंजा कसने की कोशिश की थी, तब मुख्यमंत्री खुद धरने पर बैठ गई थीं। ऐसे में भला उन पर कैसे भरोसा किया जा सकता था कि वे स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने में सहयोग करेंगे, राज्य सरकार की मर्जी के अनुरूप काम नहीं करेंगे। उनके खिलाफ कांग्रेस ने भी शिकायत दर्ज कराई थी। उत्तर प्रदेश के गृह सचिव को लेकर भी इसी तरह की आशंकाएं जाहिर की जा रही थीं।

ऐसे समय में, जब विपक्षी दल मतदान मशीनों में गड़बड़ी की आशंका जताते हुए आंदोलन पर उतरे हुए हैं, बड़े जन समुदाय में भी चुनाव प्रक्रिया पर संदेह पैदा हो गया है, तब ऐसे अधिकारियों को उनके पद पर बनाए रखना किसी भी रूप में उचित नहीं कहा जा सकता, जिनका आचरण संदिग्ध माना जाता रहा है। मगर केवल इतने भर से चुनाव में निष्पक्षता की गारंटी सुनिश्चित नहीं हो जाती। निर्वाचन आयोग को यह भरोसा कायम करना होगा कि हटाए गए अधिकारियों की जगह जिन्हें नियुक्त किया गया है, वे वास्तव में पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं करेंगे। जिस तरह की सक्रियता और प्रतिबद्धता वह अभी दिखा रहा है, उसे पूरी चुनाव प्रक्रिया के दौरान दिखानी पड़ेगी। आखिर स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव निर्वाचन आयोग की साख से जुड़ा विषय है।

पुतिन की सत्ता

रूस में राष्ट्रपति चुनाव के नतीजे अप्रत्याशित नहीं हैं। यह पहले से तय माना जा रहा था कि वहां व्लादिमीर पुतिन की एक बार फिर बड़ी जीत होगी। इसलिए जब पुतिन के भारी मतों के अंतर से राष्ट्रपति चुने जाने की घोषणा हुई, तो किसी को हैरानी नहीं हुई। गौरतलब है कि पुतिन को 87.29 फीसद वोट मिले। पिछली बार उन्हें 76.7 फीसद वोट मिले थे। यानी बीते कार्यकाल के दौरान रूस में उनके प्रभाव का और विस्तार हुआ है। हालांकि इसी बीच रूस को कोरोना महामारी सहित अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बहुस्तरीय चुनौतियों से जूझना पड़ा। रूस के सामने सबसे जटिल स्थिति यूक्रेन के साथ युद्ध की शुरुआत है, जो अब तीसरे साल में दाखिल हो चुकी है और उसके खत्म होने की फिलहाल कोई उम्मीद नहीं दिख रही। इस मुद्दे ने पुतिन को अपने सामने के मैदान को साफ करने में बड़ी भूमिका निभाई। आंतरिक मोर्चे पर रूस की अर्थव्यवस्था में मजबूती से लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक ताकतवर देश के रूप में अपनी जगह बनाने का राजनीतिक असर भी चुनाव पर पड़ा और लोगों ने पुतिन को चुना। उनका यह कार्यकाल 2030 तक के लिए होगा।

रूस में जनमत संग्रह से 2020 में जो संविधान संशोधन कराया गया था, उसके तहत पुतिन अभी छह साल के दो और कार्यकाल या 2036 तक राष्ट्रपति बने रह सकते हैं। यह उनका पांचवां कार्यकाल है और अब तक आंतरिक मोर्चे पर उनके सामने किसी प्रतिद्वंद्वी के उभरने की स्थितियां बेहद मुश्किल रही हैं। पिछले कुछ वर्षों में जो इक्का-दुक्का विपक्षी स्वर उभरे, वे उनके सामने कोई चुनौती नहीं बन सके। एलेक्सी नवेलनी को पुतिन का सबसे कट्टर प्रतिद्वंद्वी माना जाता था। राष्ट्रपति चुनाव शुरू होने के पहले ही जेल में उनकी मौत हो गई। इसी तरह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर यूक्रेन के साथ युद्ध के सवाल पर रूस के खिलाफ बनने वाले मोर्चे से भी पुतिन को कोई खास नुकसान नहीं पहुंचा और तमाम झटकों के बावजूद उन्होंने अपनी वैश्विक धमक बनाए रखी। अब नए कार्यकाल की शुरुआत में ही उन्होंने जिस तरह तीसरे विश्वयुद्ध की आशंका जताई है, उसके मद्देनजर अंतरराष्ट्रीय कूटनीति के मोर्चे पर उनके रुख पर दुनिया की नजर रहेगी।

वनों को बचाने की चुनौती

संयुक्त राष्ट्र की एक रपट के मुताबिक पिछले तीन दशक में विश्वभर में करीब एक अरब एकड़ वन क्षेत्र नष्ट हो गए हैं।

योगेश कुमार गोयल

पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने में मनुष्यों और जीव-जंतुओं के अलावा वृक्षों तथा वनों का भी बेहद महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। दरअसल, वन जीव-जंतुओं की अनेक प्रजातियों का प्राकृतिक आवास स्थान होने के साथ-साथ भोजन का माध्यम भी हैं। पृथ्वी पर जीवन के लिए सबसे जरूरी तत्त्व है आक्सीजन, धरती पर वन ही हैं, जो बड़ी मात्रा में वातावरण से कार्बन डाईआक्साइड सोखकर उसे आक्सीजन में बदलते हैं। वन वर्षा कराने, तापमान को नियंत्रित रखने, मृदा के कटाव को रोकने तथा जैव-विविधता को संरक्षित करने में सहायक होते हैं और सही मायनों में पृथ्वी पर पाई जाने वाली जैव विविधता वनों के कारण ही है। पृथ्वी के तापमान को नियंत्रित रखने में वनों की अहम भूमिका होती है। हालांकि दुनिया भर में वनों की अंधाधुंध कटाई के कारण अब पृथ्वी पर वन और उनमें रहने वाले जीव-जंतुओं के आवास स्थल काफी सिमट गए हैं। हर वर्ष लगने वाली आग के कारण लाखों हेक्टेयर जंगल तथा जीव-जंतुओं की अनेक प्रजातियां नष्ट हो जाती हैं।

संयुक्त राष्ट्र की एक रपट के मुताबिक पिछले तीन दशक में विश्वभर में करीब एक अरब एकड़ वन क्षेत्र नष्ट हो गए हैं। कुछ दशक पहले तक जहां पृथ्वी का करीब पचास फीसद भू-भाग वनों से आच्छादित था, अब यह महज तीस फीसद रह गया है। अगर इसी रफ्तार से वनों का सफाया होता रहा, तो इसमें और कमी आएगी। पर्यावरण विशेषज्ञों के अनुसार वनों की संख्या घटते जाने का सीधा असर जैव विविधता पर पड़ेगा। इससे आने वाले समय में जहां जल चक्र, मृदा संरक्षण और जैव मंडल पर गहरा प्रभाव पड़ेगा, वहीं जीव-जंतुओं के आवास पर भी संकट आएगा और अनियमित मौसम से भयंकर दुष्प्रभाव सामने आएंगे। जंगलों की अंधाधुंध कटाई के कारण ही अब पृथ्वी पर 'ग्लोबल वार्मिंग' के साथ-साथ प्राकृतिक आपदा की तीव्रता लगातार बढ़ रही है। वन पृथ्वी के फेफड़ों की भांति कार्य करते हैं, जो वातावरण से सल्फर डाईआक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, अमोनिया, ओजोन आदि प्रदूषक गैसों को अपने अंदर समाहित कर वातावरण में प्राणवायु छोड़ते हैं।

यही कारण है कि वैश्विक स्तर पर लोगों को वनों के महत्त्व के प्रति जागरूक करने, इनके संरक्षण के लिए समाज का योगदान हासिल करने और वृक्षारोपण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष 'अंतरराष्ट्रीय वन दिवस' या 'विश्व वानिकी दिवस' मनाया जाता है। इसके लिए प्रतिवर्ष संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा एक विषय-वस्तु निर्धारित की जाती है, जिसे जंगलों पर सहयोगात्मक भागीदारी द्वारा चुना जाता है। इस वर्ष इसकी विषय-वस्तु 'वन और नवाचार' निर्धारित की गई है। यह विषय वनों की सुरक्षा, प्रबंधन और पुनर्स्थापित करने में प्रौद्योगिकी और रचनात्मक दृष्टिकोण की महत्त्वपूर्ण भूमिका को उजागर करता तथा नवाचार द्वारा निभाई जाने वाली महत्त्वपूर्ण भूमिका पर विशेष जोर देता है। अगर शुरुआत से अभी तक की विषय-वस्तु पर नजर डालें तो 2014 से 2021 के बीच अंतरराष्ट्रीय वन दिवस की विषय-वस्तु क्रमशः 'हमारे वन, हमारा भविष्य', 'वन, जलवायु, परिवर्तन', 'वन और जल', 'वन और ऊर्जा', 'वन और शहर', 'वन और शिक्षा', 'वन और जैव विविधता', 'वन बहालीः पुनर्प्राप्ति और कल्याण का मार्ग' तथा 'वन तथा सतत उत्पादन और खपत' रखी जा चुकी हैं।

> सन 2021 के ग्लासगो जलवायु सम्मेलन में सौ से ज्यादा देशों ने वर्ष 2030 तक वनों की कटाई पर पूर्ण पाबंदी लगाने का संकल्प लिया था। वनों की अंधाधुंध कटाई तथा बढ़ते प्रदूषण के कारण ही अब विश्वभर में कई ग्लेशियर लुप्त होने के कगार पर हैं और 'ग्लोबल वार्मिंग' का खतरा निरंतर बढ़ रहा है, जिसके कारण पिछले कुछ वर्षों से दुनिया भर में मौसम में बड़े बदलाव देखने को मिल रहे हैं। यही कारण है कि पूरी दुनिया को एकजुट होकर वनों का विनाश रोकने के लिए सार्थक पहल करने की सख्त जरूरत महसूस की जाने लगी है।

भारत में मुख्य रूप से सदाबहार वन, मैंग्रोव वन, शंकुधारी वन, पर्णपाती वन, शीतोष्ण कटिबंधीय वन हैं। सदाबहार वनों को वर्षा वन भी कहा जाता है, जो भारत में पश्चिमी घाट, अंडमान निकोबार द्वीप समूह तथा पूर्वोत्तर भारत जैसे उच्च वर्षा क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इन क्षेत्रों में वृक्ष एक-दूसरे से आपस में मिलकर ऐसी छत-सी बना लेते हैं कि सूर्य का प्रकाश जमीन तक नहीं पहुंच पाता और इसीलिए जमीन पर बड़ी संख्या में पेड़-पौधे उग जाते हैं। मैंग्रोव वन डेल्टाई इलाकों तथा नदियों के किनारे पर उगते हैं और नदियों द्वारा अपने साथ बहाकर लाई गई मिट्टी के साथ लवणयुक्त तथा शुद्ध जल में आसानी से वृद्धि कर जाते हैं। नुकीली पत्तियों वाले काफी सीधे और लंबे वृक्षों वाले शंकुधारी वन अधिकांश हिमालय पर्वत जैसे कम तापमान वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं। इन वृक्षों की शाखाएं नीचे की ओर झुकी होती हैं, इसलिए इनकी टहनियों पर बर्फ नहीं टिक पाती। पर्णपाती वन मध्यम वर्षा वाले ऐसे इलाकों में पाए जाते हैं, जहां वर्षा कुछ महीनों के लिए ही होती है। मानसून आने पर तेज बारिश और सूर्य का प्रकाश जमीन तक पहुंचने पर इन वनों की वृद्धि तेजी से होती है और मानसून में ही ये घनी वृद्धि करते हैं। गर्मी तथा सर्दी के मौसम में इन वृक्षों की पत्तियां गिर जाती हैं और चैत्र माह में इन पर नई पत्तियां आनी शुरू हो जाती हैं। खजूर, कैक्टस, नागफनी जैसी वनस्पतियों और छोटी, मोटी और मोमयुक्त पत्तियों वाले कांटेदार वन कम नमी वाले क्षेत्रों में पाए जाते हैं, जिनकी रेशेयुक्त जड़ें धरती में गहरे समाई होती हैं। इन वनों में कांटेदार वृक्ष काफी दूर-दूर स्थित होते हैं, जो जल संरक्षित करते हैं। उष्णकटिबंधीय वन भूमध्य रेखा के निकट पाए जाते हैं, जबकि शीतोष्ण वन मध्यम ऊंचाई वाले स्थानों और बोरील वन ध्रुवों के निकट मिलते हैं।

केंद्रीय पर्यावरण, वन एवं जलवायु मंत्रालय वर्ष 1987 से देश में वनों तथा वृक्षों की स्थिति का जायजा लेने वाली रपट हर दो वर्ष में प्रकाशित करता है। 2019 के बाद 2022 में मंत्रालय द्वारा जारी की गई 'सत्रहवीं भारत वन स्थिति रपट-2021' में 2019 से 2021 के बीच दो वर्षों में देशभर में वन तथा वृक्ष आच्छादित भू-भाग का दायरा 2261 वर्ग किलोमीटर बढ़ने की बात कही गई थी। हालांकि 2017 की तुलना में 2019 में जंगल तथा वृक्षों के आवरण में 5188 वर्ग किलोमीटर की वृद्धि दर्ज की गई थी, उस दृष्टि से 2019 से 2021 के बीच हुई वृद्धि काफी कम रही। रपट के मुताबिक देश में अब वन आच्छादित भू-भाग 809537 वर्ग किलोमीटर हो गया है। नई सर्वेक्षण रपट के मुताबिक अब देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र के 24.62 फीसद भू-भाग पर वनों और वृक्षों का आवरण है, जबकि राष्ट्रीय वन नीति-1988 में देश के कुल 33 फीसद भूभाग को वनाच्छादित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था यानी अब भी हम लक्ष्य से बहुत दूर हैं।

2021 के ग्लासगो जलवायु सम्मेलन में सौ से ज्यादा देशों ने वर्ष 2030 तक वनों की कटाई पर पूर्ण पाबंदी लगाने का संकल्प लिया था। वनों की अंधाधुंध कटाई तथा बढ़ते प्रदूषण के कारण ही अब विश्वभर में कई ग्लेशियर लुप्त होने के कगार पर हैं और 'ग्लोबल वार्मिंग' का खतरा निरंतर बढ़ रहा है, जिसके कारण पिछले कुछ वर्षों से दुनिया भर में मौसम में बड़े बदलाव देखने को मिल रहे हैं। यही कारण है कि पूरी दुनिया को एकजुट होकर वनों का विनाश रोकने के लिए सार्थक पहल करने की सख्त जरूरत महसूस की जाने लगी है।

दिखावे का रोग

गौरव बिस्सा

वर्तमान विवाह समारोहों को देखकर इससे जुड़ी कोई आदर्श बात क्रियान्वित होती नजर नहीं आती। ऐसा लगता ही नहीं कि विवाह कोई संस्कार है या गुरुतर दायित्व को ग्रहण करने का एक समारोह है। समाज में व्याप्त कुरीतियों की तरह परंपरा में से एक है विवाह समारोहों में धन, वैभव और अपने संसाधनों का अहंकारपूर्ण प्रदर्शन। जिसके पास संसाधन होते हैं, वह इसका कैसा प्रदर्शन करता है, यह किसी से छिपा नहीं है। कहीं-कहीं एक सौ एक व्यंजन बनाना, अपने समधियों या वर-पक्ष के रिश्तेदारों के लिए चांदी-सोने के थाल सजाना, इसमें भोजन डालना और उसे बर्बाद करना, मिठाई की दुकान या फलों की मुफ्त दुकानें ही विवाह स्थल पर लगवा देना, बेटियों को लाखों रुपए और स्वर्ण आभूषण देना आदि काम अहंकार का दिखावा करते प्रतीत होते हैं। धन के इस प्रदर्शन से नौकरीपेशा ईमानदार व्यक्ति के लिए अपनी संतान का विवाह या अन्य समारोह करवा पाना ही भारी हो जाता है, क्योंकि समाज का आभिजात्य वर्ग धन खर्च करने में एक पैमाना या मानदंड स्थापित कर देता है। यहीं से पनपता है भ्रष्टाचार, धन की दौड़, अहंकार, भ्रष्टाचार करके भी पैसा कमाने की इच्छा, पति-पत्नी के बीच पैसों को लेकर तनाव, जिसका अंत कई बार बहुत भयावह होता है।

दुनिया मेरे आगे

> रूढ़िवादी होने से समाज और राष्ट्र का विकास नहीं होता। विकासशील सोच रखना समय की मांग है। व्यर्थ की झूठी शान के चलते बिना वजह के वैवाहिक आडंबरों को गले लगाना कहां तक जायज है? ऐसे आडंबरों के विरोधियों को समाज मूर्ख का तमगा देकर हंसी उड़ाता है।

इस पर विचार करने की जरूरत है। मसलन, एक बड़ी कढ़ाईनुमा 'बाथिंग टब' यानी नहाने के पात्र में हल्दी के पानी में वे युगल, जिनका विवाह होना है। क्या इसे हल्दी की परंपरा कहा जा सकता है? दिखावा कैसे किसी परंपरा को भी लुप्त या विकृत करता है, यह देखा जा सकता है। पहले रिश्तेदार परस्पर एक दूसरे को जानते पहचानते थे। अब एक दूसरे को पहचानते भी नहीं, इसलिए कई बार विवाह के मौके पर परिवारों में 'ड्रेस कोड' यानी पहचान में आने वाले परिधान की व्यवस्था की जाने लगी है। सभी व्यक्ति एक जैसे परिधान में। क्या यह आवश्यक है? कतई नहीं।

यह बाजार का मायाजाल है, जिसमें वस्त्र निर्माता कंपनियां अपने उत्पाद बेचती हैं। क्या इसका विवाह संस्कार से कोई मेल है? नहीं, मगर इसे प्रतिष्ठा से जोड़ा जा रहा है। किसी निर्धन या कम आमदनी वाले व्यक्ति या परिवार के पास वैसे वस्त्र न हों, तो वह वस्त्र खरीदेगा। इससे बिक्री बढ़ती है। विवाह समारोह में महिलाएं मांगलिक गीत गाती थीं और गीतों से ससुराल पक्ष के लोगों का स्वागत करती थीं। इसमें अपनापन था, प्रेम था और एक दूसरे के प्रति अनुराग झलकता था। महिलाएं ससुराल पक्ष के कुछ लोगों का नाम अपने गीतों में लेती थीं और वे मांगलिक गीत वर-वधु को आशीष देते थे। अब महिला संगीत के नाम पर नृत्य सिखाने वाला कोरियोग्राफर विवाह से एक माह पूर्व सभी को नृत्य करना सिखाता है। 'संगीत संध्या' मानो एक प्रतियोगिता बन गई है। इसमें भी रील बनाने, वीडियो और फोटो का कारोबार बढ़ाने का मंतव्य छिपा है।

विवाह में फेरे क्यों होते हैं, सप्तपदी क्या है, समर्पण क्यों जरूरी है और पति-पत्नी के लिए परस्पर त्याग का क्या महत्त्व है, इस पर समाज मानो मौन है। दुख तो तब होता है, जब सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त, उच्च डिग्रीधारी युवा भी इन कुरीतियों पर मौन रहते हैं। 'डेस्टिनेशन वेडिंग' के नाम पर अपने पिता की तीस वर्ष की कमाई को एक ही पल में खर्च करवा देने वाले तथाकथित उच्च शिक्षित युवक या युवती को क्या वास्तव में शिक्षित और समझदार कहा जा सकता है? यह कौन-सी शिक्षा है, जिसमें युवक या युवती को यह भी भान न रहे कि उसके विवाह के कारण पिता के जीवन भर का निवेश समाप्त हो जाएगा। मगर यह भी लगता है कि ऐसे आयोजनों में पिता भी संसाधनों के दिखावे या प्रदर्शन में एक सक्रिय हिस्सेदार होता है।

पैसा खर्च करना पूरी तरह गलत नहीं है, मगर दिखावे के लिए नहीं होना चाहिए। सौ व्यंजनों के निर्माण में या स्वर्ण आभूषण देने के खर्च के स्थान पर उस धन को बालक या बालिका को आत्मनिर्भर बनाने, उद्यमिता आधारित लघु उद्योग खोलने, छोटा व्यापार शुरू करने, भविष्य के लिए बचत करने, गरीबों के लिए पुस्तकालय बनाने, निर्धन बच्चों को मुफ्त पुस्तक वितरित करने, अस्पताल में मशीनरी खरीदने या समाज हित में भवन निर्माण आदि में खर्च करना क्या पैसे का सार्थक उपयोग नहीं है?

यह भी समझना होगा की रूढ़िवादी होने से समाज और राष्ट्र का विकास नहीं होता। विकासशील सोच रखना समय की मांग है। व्यर्थ की झूठी शान के चलते बिना वजह के वैवाहिक आडंबरों को गले लगाना कहां तक जायज है? ऐसे आडंबरों के विरोधियों को समाज मूर्ख का तमगा देकर हंसी उड़ाता है। कई बार तो दंडित भी करता है। इसके बावजूद युवा वर्ग को चाहिए कि विपरीत परिस्थितियों से लड़ाई जारी रखे। तथाकथित सामाजिक दबाव से दबे बिना वैवाहिक समारोह में होने वाले अनावश्यक खर्च का विरोध जारी रखे। इसलिए भी कि चंद अमीर परिवारों के धन-प्रदर्शन का मनोवैज्ञानिक असर समाज के बाकी हिस्से पर भी पड़ता है। इसके बाद कुछ लोग कर्ज लेकर ऐसा करने की कोशिश करते हैं तो कुछ हीन भावना से ग्रस्त हो जा सकते हैं।

विवाह सिर्फ एक उत्सव नहीं है, यह समझना चाहिए। सुखी वैवाहिक जीवन को सुनिश्चित करने के लिए खर्चीले वैवाहिक समारोह नहीं, बल्कि समर्पण की शिक्षा देना उचित है। वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने वाले युगल को यह प्रशिक्षण दिया जाए कि वे दोनों ही निरंतर एक दूसरे से हारते रहें। हारने का अर्थ है अहंकार की लड़ाई में आत्मसमर्पण करना। जितना अहंकार रहित होंगे, उतना सुखी रहेंगे। अहंकार को पोषण देंगे तो जीत की इच्छा होगी। हारने पर यह प्रतीत होगा कि आपस में अहंकार नहीं है। अगर वर-वधु दोनों अहंकार से रहित होंगे, तभी जीवन सुखी बन सकेगा। यही सुखी वैवाहिक जीवन की रीढ़ है।

जागरूकता की जरूरत

आज दुनिया भर में डिजिटल क्रांति में धोखाधड़ी ने भी बाधा डाला है। इसलिए बैंक और अन्य आर्थिक दायरों के प्रति उपभोक्ताओं को जागरूक करना बेहद जरूरी है। भारत में भी सरकार लोगों को बाजार की धोखाधड़ी से बचने के लिए कायदे-कानून बनाने और इसके प्रति जागरूक करने के लिए प्रयास करती हैं। लेकिन यह प्रयास निरर्थक है जब तक लोग इसके प्रति गंभीर नहीं होते। आजकल देश में आनलाइन खरीदारी का दौर भी पूरे जोरों पर है। अक्सर यह खबर भी आती है कि किसी ने कोई सामान मंगवाया होता है और कंपनी भेज कुछ और देती है। कुछ आनलाइन कंपनियां ऐसी भी हैं जो सोशल वेबसाइटों पर लोगों को अपने जाल फंसाकर पुराना या घटिया सामान भी बेचती है। सरकार को चाहिए कि आनलाइन खरीदारी से उपभोक्ताओं का हित सुरक्षित करने के लिए कोई कदम उठाए। जब तक लोग किसी वस्तु या खाने-पीने की चीजों की गुणवत्ता पर ध्यान नही देंगे और गड़बड़ी की शिकायत संबंधित विभाग या उपभोक्ता अदालत में नहीं करते, तब तक उपभोक्ताओं को दिए जाने वाले संरक्षण के प्रयास कामयाब नहीं हो सकते।

- राजेश कुमार चौहान, जलंधर

खींचतान के मुद्दे

नागरिकता कानून, 1955 में बहुत विचार विमर्श के बाद नागरिकता पाने और उससे वंचित करने के नियम बनाए गए थे। समय के साथ बदलाव लाना उचित जान पड़ता, अगर बदलाव में आम जन का भी विमर्श शामिल होता। सीएए अच्छा हो सकता है, लेकिन इसमें ऐसा कुछ नहीं, जो देश के नागरिकों को बेहतर बनाने में मदद करता हो। देश के पूर्वोत्तर का राज्य मणिपुर हो या असम, मेघालय, त्रिपुरा या पश्चिम बंगाल- सबको इस कानून से कुछ न कुछ शिकायत है। इसके समय की सीमा 31 दिसंबर 2014 क्यों रखी गई, इसका भी कोई स्पष्ट उत्तर नहीं है। आज सत्ताधारी खेमे को न तो अपने ही सहयोगियों की चिंता है, न देश के नागरिकों की। देश की सर्वोच्च अदालत के चुनावी बांड पर दिए निर्णय का असर क्या होगा और लोगों तक यह बात अपने आशय के साथ पहुंचेगी भी या नहीं, इसका कुछ पता नहीं। जब कहा जाता है कि सरकार सिर्फ जनहित देखती है तो बिना जनता की राय जाने कोई संवेदनशील कानून इस रूप में क्यों बनाए जाते हैं कि आमजन उनका विरोध शुरू कर देता है।

- मुनीश कुमार, रेवाड़ी, हरियाणा

विचित्र दिशा

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ऋषि सुनक को लगता है कि 10 डाउनिंग स्ट्रीट में जाना उनके लिए अशुभ साबित हो रहा है। जब से वे इस पद पर आसीन हुए हैं, तब से उनकी रूढ़िवादी कंजर्वेटिव पार्टी तरह-तरह की मुश्किलों में फंसती जा रही है। इस सरकार की लोकप्रियता लगातार ढलान के तरफ लुढ़क रही है। देश को ब्रेक्जिट की आग में झोंककर ब्रिटेन की माली हालत खराब की जा चुकी है और वह आर्थिक मंदी के तरफ तेजी से बढ़ रहा है। नेताओं की ओर से कभी अन्य धर्मों के प्रति दुराग्रह तो कभी अश्वेत समुदाय की महिला के प्रति अभद्रतापूर्ण टिप्पणी करने का क्या कारण है? सवाल है कि क्या कंजर्वेटिव पार्टी इस तरह के बयान देने वालों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करेगी या फिर नस्लभेद को पार्टी की विचारधारा मानकर इसके पक्ष में खड़ा होगी?

- जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर

चुनाव की बिसात

लोकसभा 2024 के चुनाव के लिए भाजपा ने चुनावी प्रबंधन रणनीति और चुनावी प्रचार अभियान को इतना मजबूत कर दिया है कि विपक्षी दलों की बेचैनी साफ दिखाई देती है। हाल ही में हुए विधानसभा चुनाव में भाजपा ने राजस्थान, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में शानदार जीत हासिल करने के बाद भी एक दिन भी जाया नहीं किया। भाजपा ने अपने काफी उम्मीदवारों की सूची भी जारी कर दी है। वहीं कांग्रेस के बड़े नेता पाला बदलते दिख रहे हैं। अगर विपक्ष चुनाव में सामना करना चाहता है तो उसे अपने नेताओं की प्रतिबद्धता को सुनिश्चित करना होगा। आए दिन दिखने वाले दलबदल के मामले भारतीय लोकतंत्र को कमजोर कर रहे हैं। इस मसले पर सख्त कदम उठाने की जरूरत है, क्योंकि जब तक देश में बहुदलीय भागीदारी है, तभी तक लोकतंत्र सुरक्षित रहेगा।

- वीरेंद्र कुमार जाटव, दिल्ली

हमें लिखें, हमारा पता : edit.jansatta@expressindia.com | chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली

www.readwhere.com